मानवी क्षमता –
असीम, अप्रत्याशित

मानवी क्षमता—असीम, अप्रत्याशित

लेखक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१० मूल्य : २१.०० रुपये

विषय-सूची

मन में असंख्य सामर्थ्यों का भंडार छुपा हुआ है। मन जीवन है, मन ही सिद्धियों का साधन है, मन ही भगवान् है। मन का पूर्ण विकास ही एक दिन मनुष्य को अंततः सिद्धियों, सामर्थ्यों का स्वामी बना देता है। पर उसके लिए गहन संयम, साधना और तपश्चर्या के बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता।

मुद्रक

युग निर्माण योजना प्रेस,

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

जीवन विद्युत् का उद्गम स्रोत

❖

अपनी उंगलियों से नापने पर ९६ अंगुल के इस मनुष्य शरीर का वैसे तो प्रत्येक अवयव गणितीय आधार पर बना और अनुशासित है पर जितना रहस्यपूर्ण यंत्र इसका मस्तिष्क है, संसार का कोई भी यंत्र न तो इतना जटिल, रहस्यपूर्ण है और न समर्थ। यों साधारणतया देखने में उसके मुख्य कार्य—१ ज्ञानात्मक, २. क्रियात्मक और ३. संयोजनात्मक है। पर जब मस्तिष्क के रहस्यों की सूक्ष्मतम जानकारी प्राप्त करते हैं तो पता चलता है कि इन तीनों क्रियाओं को मस्तिष्क में इतना अधिक विकसित किया जा सकता है कि (१) संसार के किसी भी एक स्थान में बैठे-बैठे संपूर्ण ब्रह्मांड के किसी भी स्थान की चींटी से भी छोटी वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। (२) कहीं भी बैठे हुए किसी को कोई संदेश भेज सकते हैं, कोई भार वाली वस्तु को उठाकर ला सकते हैं, किसी को मूर्छित कर सकते हैं, मार भी सकते हैं। (३) संसार में जो कुछ भी है, उस पर स्वामित्व और वशीकरण भी कर सकते हैं। अष्ट सिद्धियाँ और नव-निधियाँ वस्तुतः मस्तिष्क के ही चमत्कार हैं, जिन्हें मानसिक एकाग्रता और ध्यान द्वारा भारतीय योगियों ने प्राप्त किया था।

ईसामसीह अपने शिष्यों के साथ यात्रा पर जा रहे थे। मार्ग में वे थक गए, एक स्थान पर उन्होंने अपने एक शिष्य से कहा—"तुम जाओ सामने जो गाँव दिखाई देता है, उसके अमुक स्थान पर एक गधा चरता मिलेगा, तुम उसे सवारी के लिए ले आना।" शिष्य गया और उसे ले आया। लोग आश्चर्यचकित थे कि ईसामसीह की इस दिव्य दृष्टि का रहस्य क्या है ? पर यह रहस्य व्यक्ति के मस्तिष्क में विद्यमान है, बशर्ते कि हम भी उसे जागृत कर पाएँ।

जिन शक्तियों और सामर्थ्यों का ज्ञान हमारे भारतीय ऋषियों ने आज से करोड़ों वर्ष पूर्व बिना किसी यंत्र के प्राप्त किया था, आज विज्ञान और शरीर रचना शास्त्र (बायोलॉजी) द्वारा उसे प्रमाणित किया जाना यह बतलाता है कि हमारी योग-साधनाएँ, जप और ध्यान की प्रणालियाँ समय का अपव्यय नहीं वरन् विश्व के यथार्थ को जानने की एक व्यवस्थित और वैज्ञानिक प्रणाली है।

मस्तिष्क नियंत्रण प्रयोगों द्वारा डॉ० जोजे डेलगाडो ने भी यह सिद्ध कर दिया है कि मस्तिष्क के दस अरब न्यूरोन्स के विस्तृत अध्ययन और नियंत्रण से न केवल प्राण-धारी की भूख-प्यास, काम-वासना आदि पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकना वरन् किसी के मन की बात जान लेना, अज्ञात रूप से कोई बिना तार के तार की तरह संदेश और प्रेरणाएँ भेजकर कोई भी कार्य करा लेना भी संभव है। न्यूरोन मस्तिष्क से शरीर और शरीर से मस्तिष्क में संदेश लाने, ले जाने वाले बहुत सूक्ष्म कोशों (सेल्स) को कहते हैं, इनमें से बहुत पतले श्वेत धागे से निकले होते हैं, इन धागों से ही इन कोशों का परस्पर संबंध और मस्तिष्क में जाल-सा बिछा हुआ है। यह कोश जहाँ शरीर के अंगों से संबंध रखते हैं, वहाँ उन्हें ऊर्ध्वमुखी बना लेने से प्रत्येक कोशाणु सृष्टि के दस अरब नक्षत्रों के प्रतिनिधि का काम कर सकते हैं, इस प्रकार मस्तिष्क को ग्रह-नक्षत्रों का एक जगमगाता हुआ यंत्र कह सकते हैं।

डॉ० डेलगाडो ने अपने कथन को प्रमाणित करने के लिए कई सार्वजनिक प्रयोग करके भी दिखाए। अली नामक एक बंदर को केला खाने के लिए दिया गया। जब वह केला खा रहा था, तब डॉ० डेलगाडो ने 'इलेक्ट्रो-एन्सीफैलोग्राफ' के द्वारा बंदर के मस्तिष्क को संदेश दिया कि केला खाने की अपेक्षा भूखा रहना चाहिए तो बंदर ने भूखा होते हुए भी केला फेंक दिया। 'इलेक्ट्रो-एन्सीफैलोग्राफ' एक ऐसा यंत्र है, जिसमें विभिन्न क्रियाओं के समय मस्तिष्क में उठने वाली भाव-तरंगों को अंकित कर लिया

गया है। किसी भी प्रकार की भाव-तरंगों को विद्युत् शक्ति द्वारा तीव्र कर देते हैं तो मस्तिष्क के शेष सब भाव दब जाते हैं और वह एक ही भाव तीव्र हो उठने से मस्तिष्क केवल वही काम करने लगता है।

डॉ० डेलगाडो ने इस बात को एक अत्यंत खतरनाक प्रयोग द्वारा भी सिद्ध करके दिखाया। एक दिन उन्होंने इस प्रयोग की सार्वजनिक घोषणा कर दी। हजारों लोग एकत्रित हुए। सिर पर इलेक्ट्रोड जड़े हुए दो खूँखार साँड़ लाए गए। इलेक्ट्रोड एक प्रकार का एरियल है, जो रेडियो ट्रांसमीटर द्वारा छोड़ी गई तरंगों को पकड़ लेता है। जब दोनों साँड़ मैदान में आये तो उस समय की भयंकरता देखते ही बनती थी, लगता था दोनों साँड़ डेलगाडो का कचूमर निकाल देंगे, पर वे जैसे ही डेलगाडो के पास पहुँचे, उन्होंने अपने यंत्र से संदेश भेजा कि युद्ध करने की अपेक्षा शांत रहना अच्छा है तो बस फुँसकारते हुए दोनों साँड़ ऐसे प्रेम से खड़े हो गये, जैसे दो बकरियाँ खड़ी हों। उन्होंने कई ऐसे प्रयोग करके रोगियों को भी अच्छा किया।

सामान्य व्यक्ति के मस्तिष्क में २० वॉट विद्युत् शक्ति सदैव संचालित होती रहती है, पर यदि किसी प्रविधि (प्रोसेस) से प्रत्येक न्यूरोन को सजग किया जा सके तो दस अरब न्यूरोन, दस अरब डायनमो का काम कर सकते हैं, उस गर्मी, उस प्रकाश, उस विद्युत् क्षमता का पाठक अनुमान लगाएँ कितनी अधिक हो सकती होगी ?

विज्ञान की यह जानकारियाँ बहुत ही सीमित हैं। मस्तिष्क संबंधी भारतीय ऋषियों की शोधें इससे कहीं अधिक विकसित और आधुनिक हैं। हमारे यहाँ मस्तिष्क को देव-भूमि कहा गया है और बताया है कि मस्तिष्क में जो सहस्र दल कमल हैं, वहाँ इंद्र और सविता विद्यमान हैं। सिर के पीछे के हिस्से में रुद्र और पूषन देवता बताए हैं। इनके कार्यों का विवरण देते हुए शास्त्रकार ने केंद्र और सविता को चेतन शक्ति कहा है और रुद्र एवं पूषन को अचेतन।

दरअसल वृहत् मस्तिष्क (सेरेब्रम) ही वह स्थान है, जहाँ शरीर के सब भागों से हजारों नस-नाड़ियाँ आकर मिली हैं। यही स्थान शरीर पर नियंत्रण रखता है, जबकि पिछला मस्तिष्क स्मृति शक्ति केंद्र है। अचेतन कार्यों के लिए यहीं से एक प्रकार के विद्युत् प्रवाह आते रहते हैं।

मनोविज्ञान रसायनों के विशेषज्ञ डॉ० स्किनर का कथन है कि वह दिन दूर नहीं जब इस बीस करोड़ तंत्रिका कोशिकाओं वाले तीन पौंड वजन के अद्‌भुत ब्रह्मांड मानवीय मस्तिष्क के दिये हुए एक से एक अद्‌भुत रहस्य को बहुत कुछ समझ लिया जायेगा और उस पर रसायनों तथा विद्युत् धाराओं के प्रयोग द्वारा आधिपत्य स्थापित किया जा सकेगा। यह सफलता अब तक की समस्त वैज्ञानिक उपलब्धियों से बढ़कर होगी, क्योंकि अन्य सफलताएँ तो केवल मनुष्य के लिए सुविधा-साधन ही प्रस्तुत करती है, पर मस्तिष्क केंद्र नियंत्रण से तो अपने आपको ही अभीष्ट स्थिति में बदल लेना संभव हो जायेगा, लेकिन इसके बड़े भारी विनाशकारी दुष्परिणाम भी हो सकते हैं। कोई हिटलर, मुसोलिनी या स्टालिन जैसा अधिनायकवादी प्रकृति का व्यक्ति उन साधनों पर आधिपत्य कर बैठा तो वह इसका उपयोग अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए लोगों को गलत दिशा में बहका भी सकता है।

जर्मनी के मस्तिष्क विधा विज्ञानी डॉ० ऐलन जैक वसन और उनके सहयोगी मार्क रोजनवर्ग एक प्रयोग कर रहे हैं कि क्या किसी सुविकसित मस्तिष्क की प्रतिभा को स्वस्थ अविकसित मस्तिष्क में भी विकसित किया जा सकता है ? क्या समर्थ मस्तिष्क का लाभ अल्प विकसित मस्तिष्क को भी मिल सकता है।

शिक्षण की प्रणाली पुरानी है। शिक्षित व्यक्ति, अशिक्षित व्यक्ति को पढ़ा-लिखाकर सुयोग्य बनाते हैं और मस्तिष्कीय क्षमता विकसित करते हैं। विद्यालयों में यही होता चला आया है।

चिकित्साशास्त्री ब्राह्मी, आँवला, शतावरि, असगंध, सर्पगंधा आदि औषधियों की सहायता से बुद्धि वृद्धि का उपाय करते हैं। मस्तिष्क रासायनिक तत्त्वों का सार लेकर, इंजेक्शन द्वारा एक जीव से लेकर दूसरे के मस्तिष्क में प्रवेश करने का भी प्रयोग हुआ, पर वह कुछ अधिक न हो सका। अन्य जाति के जीवों का विकसित मस्तिष्क सत्व अन्य जाति के जीवों का शरीर ग्रहण नहीं करता कई बार तो उल्टी प्रतिक्रिया होने से उल्टी हानि होती है। फिर क्या उपाय किया जाए ? उसी जाति के जीव का मस्तिष्क उसी जाति के दूसरे जीव को पहुँचाएँ तो लाभ कुछ नहीं क्योंकि उनकी संरचना प्रायः एक-सी होती है।

मस्तिष्क के तीन भाग मुख्य हैं—एक समस्त क्रिया-प्रतिक्रियाओं का संचालक, दूसरा मांस-पेशियों का नियंत्रक, तीसरा साँस लेने, भोजन पचाने आदि स्वसंचालित प्रक्रिया का विधायक। इन तीनों में वह भाग अधिक महत्त्वपूर्ण है, जो मन और बुद्धि को संभालता है। इसी के विकास को मानसिक विकास माना जाता है। शेष मस्तिष्कीय क्रियाकलाप तो प्राणियों के शरीरों की स्थिति के अनुरूप अपना काम करते ही रहते हैं।

कुछ प्राणियों के मस्तिष्क सुई की नोंक जितने छोटे होते हैं, कुछ के बहुत बड़े। ह्वेल मछली का मस्तिष्क मनुष्य से भी बड़ा होता है। इतने बड़े शरीर की व्यवस्था बनाए रखने के लिए इतना बड़ा यंत्र भी होना चाहिए, पर उसमें भी बौद्धिक प्रतिभा वाला भाग अविकसित है।

प्राणिशास्त्री विचिस्टन और मनोविज्ञान शोधकर्ता वेलस्कोव मानसिक विकास की बहुत कुछ संभावना इस बात पर संभव मानते कि अविकसित मस्तिष्क वालों का सान्निध्य विकसित मस्तिष्क वालों के साथ रहे। सरकस के पशुओं को सिखाने में जहाँ सधाने की पद्धति कम कारगर सिद्ध होती है, वहाँ उनका बौद्धिक और भावनात्मक विकास बहुत कुछ पशु शिक्षक की स्थिति से जुड़ा

रहता है। समीपता के कारण उनके सोचने का ढंग और भावना बहुत कुछ वैसी ही बनने लगती है।

राजाओं, सेनापतियों के घोड़े, हाथी उनका इशारा समझते थे और सम्मान करते थे। बिगड़े हुए हाथी को राजा स्वयं जाकर संभाल लेते थे। राणा प्रताप, नैपोलियन, झाँसी की रानी के घोड़े मालिकों के इशारे ही नहीं, उनकी इच्छा को भी समझते थे और उनका पालन करते। यह उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व का अल्प विकसित बुद्धि वाले घोड़े, हाथी आदि पशुओं पर पड़ा हुआ प्रत्यक्ष प्रभाव ही था।

मस्तिष्क में से एक प्रकार की गंध सरीखी विशेष चेतन क्षमता निरंतर उड़ती रहती है। समीप रहने वाले लोग उस विशेषता से प्रभावित होते हैं। व्यक्तित्व जितना प्रभावशाली होगा—मस्तिष्क जितना विकसित होगा, उसका संपर्क क्षेत्र को प्रभावित करने वाले चुंबक भी उतना ही प्रभावशाली होगा। यदि तीव्र इच्छा और भावना के साथ इस शक्ति को किसी दूसरे की ओर प्रवाहित किया जाए तो उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। मनस्वी लोगों की समीपता से अल्प बुद्धि वालों का मस्तिष्कीय विकास होने लगता है, भले ही वह मंद गति से क्यों न हो रहा हो।

धातु पट्टी बँधवाने के झंझट से बचने के लिए एक दूसरा सरल कोई रासायनिक तरीका निकाला जा रहा है। रेडियो तत्त्वों से प्रभावित औषधियों को मनुष्य के रक्त में मिला देना। यह कार्य इंजेक्शन लगाकर अथवा मुख के द्वारा खिलाकर उसे खून में घोल दिया जायेगा। अब यह सारा रक्त ही एरियल का काम करेगा और प्रेषित प्रभाव तरंगों को पकड़कर रक्त में समाविष्ट करेगा। यह रक्त मस्तिष्क में पहुँचने पर मनुष्य को उसी प्रकार सोचने के लिए मजबूर कर देगा जैसा कि मिश्रित तरंगें उसे प्रेरणा देंगी। इस अपेक्षाकृत अधिक सरल विधि में वैज्ञानिक साधन किसी भी व्यक्ति

को कुछ भी सोचने और कुछ भी करने के लिए पूर्णतया पराधीन बना देंगे।

जिस प्रकार अंतरिक्षयानों का नियंत्रण-निर्देशन धरती पर बैठे हुए वैज्ञानिक करते रहते हैं और यान उनके निर्देशानुसार अपनी गतिविधियों में हेर-फेर करता रहता है, ठीक उसी प्रकार यह प्रयत्न भी वैज्ञानिक क्षेत्र में आरंभ हो गया है कि मनुष्य के मन मस्तिष्क को भी वैसी ही सूक्ष्म तरंगों द्वारा नियंत्रित किया जाए जैसे राकेटों को किया जाता है।

इन नये वैज्ञानिक अन्वेषणों द्वारा मनुष्य को जीवित 'रोबोट' बनाया जायेगा। वह संचालकों की इच्छानुसार चेतना युक्त राकेट की भूमिका संपादित करेगा। प्रयोग इस स्थिति में चल रहा है कि मनुष्य के सिर से एक विशेष प्रकार की धातु तारों से युक्त पट्टियाँ बाँध दी जाएँ और व्यक्ति के मस्तिष्क को एक प्रकार से रेडियो सुनते समय काम आने वाले एरियल की तरह बना दिया जाए। ट्रांसमीटर द्वारा फेंकी हुई शब्द किरणों को जिस प्रकार एरियल पकड़ता है और उसे रेडियो पर सुन लिया जाता है, उसी प्रकार वैज्ञानिक केंद्र द्वारा फ्रेंकी गई तरंगों को मनुष्य के सिर पर बँधी हुई वह धातु पट्टी पकड़ेगी और उसे मस्तिष्क में प्रवेश करा देगी। बस चिंतन पर वही प्रेषित तरंगें आ जाएँगी और उसे जैसा सोचने के लिए निर्देश दिया गया था वैसा ही सोचने के लिए विवश करेंगी। मनुष्य की स्वतंत्र चिंतन क्षमता समाप्त हो जाएगी और वह बौद्धिक पराधीनता से पूरी तरह ग्रस्त होकर वही सोचेगा, जो उसे सोचने के लिए बाध्य किया गया है।

क्या दूरवर्ती लोग बिना किसी तार रेडियो आदि के केवल मनः चेतना के आधार पर परस्पर संबंध स्थापित कर सकते हैं, उनके बीच विचारों का आदान-प्रदान हो सकता है ? इस प्रश्न को किंवदंतियों पर आधारित नहीं छोड़ा गया है, वरन् मनःशास्त्रियों ने इस संदर्भ को शोध का विषय भी बनाया है। केरोलिना के ड्यूक

विश्वविद्यालय द्वारा डॉ० राइन के नेतृत्व में इस विषय पर ढूँढ़-खोज की गई और कैंब्रिज विश्वविद्यालय के डॉ० व्हाटले कैरिंगटन ने इस अन्वेषण को हाथ में लिया। उन्होंने पाया कि यह चेतना एक सीमा तक हर किसी में होती है, पर जो लोग उसे विकसित कर लेते हैं, वे अपेक्षाकृत अधिक सफल रहते हैं। किन्हीं को जन्मजात रूप से यह प्राप्त रहती है और कुछ साधनाओं द्वारा विकसित कर सकते हैं। प्रेम और घनिष्ठता की स्थिति में यह आदान-प्रदान किन्हीं महत्त्वपूर्ण अवसरों पर अनायास भी हो सकता है।

भारत के अध्यात्मवेत्ता किसी समय इस दिशा में बहुत बड़ी खोज करने और सफलता प्राप्त करने में कृत कार्य हो चुके हैं। बुद्ध की प्रचंड विचारधारा ने अपने समय में लगभग ढाई लाख व्यक्तियों को अपनी विलासी एवं भौतिक महत्त्वाकांक्षी गतिविधियाँ छोड़कर उस कष्टकर प्रयोजन को अपनाने के लिए खुशी-खुशी कदम बढ़ाया जो प्रचंड मानसिक विद्युत् से सुसंपन्न बुद्ध को अभीष्ट था। भगवान् राम ने रीछ वानरों को ऐसे कार्य में जुट जाने के लिए भावावेश में संलग्न कर दिया, जिससे किसी लाभ की आशा तो थी नहीं, उल्टे जीवन संकट स्पष्ट था। भगवान् कृष्ण ने महाभारत की भूमिका रची और उसके लिए मनोभूमियाँ उत्तेजित कीं। पांडव उस तरह की आवश्यकता अनुभव नहीं कर रहे थे और न अर्जुन को उस संग्राम में रुचि थी तो भी विशिष्ट प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए कृष्ण ने इस तरह की उत्तेजनात्मक परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दीं। गोपियों के मन में सरस भावाभिव्यंजनाएँ उत्पन्न करने का सूत्र-संचालन कृष्ण ही कर रहे थे।

ईसामसीह, मुहम्मद, जरथुस्त्र आदि धार्मिक क्षेत्र के मनस्वी ही थे, जिन्होंने लोगों को अभीष्ट पथ पर चलने के लिए विवश किया। उपदेशक लोग आकर्षक प्रवचन देते रहते हैं, उनकी कला की प्रशंसा करने वाले भी उस उपदेश पर चलने को तैयार नहीं

होते। इसमें उनके प्रतिपाद्य विषय का दोष नहीं उस मनोबल की कमी ही कारण है, जिसके बिना सुनने वालों के मस्तिष्क में हलचल उत्पन्न किया जा सकना संभव न हो सका। नारद जी जैसे मनस्वी ही, अपने अल्प परामर्श से लोगों की जीवन धारा बदल सकते हैं। वाल्मीकि, ध्रुव, प्रहलाद, सुकन्या आदि कितने ही आदर्शवादी उन्हीं की प्रेरणा भरी प्रकाश किरण पाकर आगे बढ़े थे।

समर्थ गुरु रामदास, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, गुरु गोविंद सिंह, कबीर आदि मनस्वी महामानवों ने अपने समय के लोगों को उपयोगी प्रेरणाएँ दी हैं और अभीष्ट पथ पर चलने के लिए साहस उत्पन्न किया है। गाँधी जी की प्रेरणा से स्वतंत्रता संग्राम में अगणित व्यक्ति असाधारण त्याग बलिदान करने के लिए किस उत्साह के साथ आगे आए, यह पिछले ही दिनों की घटना है।

शक्तिपात इसी स्तर की प्रक्रिया है, जिसमें मानुषी विद्युत् से सुसंपन्न व्यक्ति का तेजस् दूसरे अल्प तेजस् व्यक्तियों में प्रवेश करके, उन्हें देखते-देखते समर्थ बनाकर रख देता है। दीपक से दीपक जलने का, पारस स्पर्श से लोहा का सोना होने का उदाहरण इसी प्रकार के संदर्भों में दिया जाता है।

● विद्युतीय आवेशों का प्रभाव

पश्चिमी वैज्ञानिकों ने स्थूल उपकरणों का भी इस दिशा में उपयोग किया है। उन प्रयोगों के परिणाम भी आए हैं। प्रसिद्ध अमेरिकी डॉ० विल्टर पेनफील्ड ने मस्तिष्क की बात नाड़ियों का अध्ययन करते समय कई कौतूहल देखे। एक दिन उन्होंने एक ८ वर्षीया बालिका के मस्तिष्क के एक भाग में विद्युत्-आवेश प्रवाहित किया। ऐसा करते ही लड़की ग्रामोफोन के रिकार्ड की तरह एक घटना सुनाने लगी—"मैं अपने भाइयों के साथ खेत में घूम रही थी। मेरे भाई मुझे चिढ़ाने के लिए खेत में छुप गए। मैं उनसे

भटक गई तभी मुझे एक आदमी दिखाई दिया। उसके वस्त्र बड़े भद्दे थे। उसने अपने थैले से एक साँप निकालकर दिखाया। मैं डरकर भागी और हाँफते हुए घर पहुँची।"

डॉ० पेनफील्ड पहले ही आश्चर्यचकित थे कि ८ वर्षीया बालिका का यह विचार असामान्य है। छोटे बच्चे इतनी खूबसूरती से घटनाओं के चित्रण नहीं कर सकते। बाद में उस लड़की की माता से पूछने पर उसने बताया—"सचमुच जब वह कोई ढाई वर्ष की बच्ची थी, तब उसके साथ यह घटना घटित हुई। पेनफील्ड को विश्वास था कि इतनी छोटी आयु का भी बच्चा अतीत की स्मृतियाँ बनाए रखने में समर्थ नहीं हो सकता। इसलिए निःसंदेह खोपड़ी के अंदर पूर्ण प्रतिभा, प्रौढ़ और विचारसंपन्न शक्ति होनी चाहिए। उस शक्ति का स्वरूप, आकृति और महत्तम क्षमताएँ क्या और कितनी हो सकती हैं ? इसका उत्तर वे तुरंत तो नहीं दे सके, पर तब से वे निरंतर मस्तिष्क के आश्चर्यजनक तथ्यों की खोज में लगे हैं, उनकी उपलब्धियाँ भारतीय तत्त्व-दर्शन की सहस्रार कमल वाली उपलब्धियों को ही प्रमाणित करती है। एक दिन लोग सच मानेंगे कि खोपड़ी के भीतर सहस्रार कमल जैसा कोई सूक्ष्म शक्ति-प्रवाह है अवश्य, जो मानवीय चेतना का ब्रह्मांड की विराट् शक्तियों से तादात्म्य कराता है; जिनमें सर्वव्यापकता, सर्वशक्तिमत्ता, भूत-भविष्य और वर्तमान सबकी सर्वज्ञता शक्ति विद्यमान है।

भारतीय योगियों ने ब्रह्मरंध्र स्थित जिन षट-चक्रों की खोज की है, सहस्रार कमल उनसे बिलकुल और सर्वप्रभुता संपन्न है। यह स्थान कनपटियों से दो-दो इंच अंदर भृकुटी से लगभग ढाई या तीन इंच अंदर छोटे-से पोले में प्रकाश पुंज के रूप में है। तत्त्वदर्शियों के अनुसार यह स्थान उलटे छाते या कटोरे के समान १७ प्रधान प्रकाश तत्त्वों से बना होता है, देखने में मर्करी लाइट के समान दिखाई देता है। छांदोग्य उपनिषद् में सहस्रार दर्शन की सिद्धि पाँच अक्षरों में इस तरह प्रतिपादन की—**'तस्य सर्वेषु लोकेषु**

कामचारो भवति' अर्थात् सहस्रार प्राप्त कर लेने वाला संपूर्ण भौतिक विज्ञान प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। यही वह शक्ति है जहाँ से मस्तिष्क शरीर का नियंत्रण करता है और विश्व में जो कुछ भी मानवकृत विलक्षण विज्ञान दिखाई देता है, उनका संपादन करता है।

डॉ० पेनफील्ड ने मस्तिष्क की खोज करके बताया कि मस्तिष्क में ऐसे तत्त्व विद्यमान हैं, जो किसी भी पुस्तक के २० हजार पृष्ठों से भी अधिक ज्ञान भंडार सुरक्षित रख सकते हैं। एक व्यक्ति एक-एक दिन में लगभग ५ लाख चित्र देखता है। चित्रों के साथ ही वह उनकी बनावट, रंग-रूप, ध्वनि, सुगंध और मनोभावों का भी आंकलन करता है। यह देखा या पढ़ा हुआ कुछ ही दिन में विस्तृत हो गया जान पड़ता है, यह केवल इसलिए होता कि हमारा बौद्धिक-संस्थान मलिनताओं से घिर जाता है। उसे तीक्ष्ण करने के लिए जिस शुद्ध स्वास्थ्य और स्वाध्याय की आवश्यकता होती है, वह हम कर नहीं पाते, फलस्वरूप यह दैवी तत्त्व दबता और अपनी विभूतियों से मनुष्य को वंचित करता चला जाता है।

यदि हम अपने मस्तिष्क के ज्ञान भाग को प्रखर रख पाएँ तो पिछले जीवन में कभी भी कुछ देखा-सुना, सोचा, अनुभव किया वही नहीं, वरन् दूसरों के द्वारा पढ़ा, सोचा, देखा-सुना और अनुभव किया हुआ भी उसी तरह पकड़ सकते हैं, जिस प्रकार परदे पर दिखाई देने वाली सिनेमा की रीलें। प्रति सेकंड एक चित्र की दर से अतीत में जो कुछ भी देखा है या भविष्य में देखने वाले हैं, वह सब मस्तिष्क में चमत्कार की तरह विद्यमान है। उसे कभी भी ढूँढ़ा और उसका लाभ उठाया जा सकता है।

योग तत्त्व की इस बात को अनेक वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा भी सिद्ध किया जा चुका है। उपरोक्त घटना के बारे में यह संदेह हो सकता है कि बालिका के साथ यह घटना इतनी तीव्रता से घटी

होगी कि छोटी अवस्था में भी अमिट छाप छोड़ गई होगी, पर कुछ ऐसे विलक्षण मामले सामने आए हैं, जो यह बताते हैं कि इसी जन्म की नहीं, मस्तिष्क में ऐसे संस्कार कोष विद्यमान हैं, जिनसे पूर्वजन्मों की घटनाओं और अनुभवों को याद किया जा सकता है। उनसे पुनर्जन्म, लोकोत्तर जीवन और जीवन की अमरता को प्रतिपादित किया जा सकता है।

उपरोक्त प्रकार का एक प्रयोग एक लड़के पर किया गया। जैसे ही मस्तिष्क की एक वातनाड़ी पर विद्युत् धारा प्रवाहित की गई, लड़का एक गीत गुनगुनाने लगा। लड़का विचित्र भाषा में गा रहा था। छंदबद्ध गुनगुनाने और संगीत मिलने के कारण लोगों को आश्चर्य हुआ। गीत टेप कर लिया गया। बाद में भाषा विशेषज्ञों और अनुवांशिकी विशेषज्ञों से जाँच कराई गई तो पता चला कि लड़के ने पश्चिम जर्मनी में बोली जाने वाली एक ऐसी भाषा का गीत गाया था जो बहुत समय पहले बोली जाती थी। लड़के का वहाँ के लोगों से किसी प्रकार का पैतृक या मातृक संबंध भी नहीं था। इससे एक ही बात साबित होती है कि लड़का किसी जन्म में उस प्रदेश का कोई मनुष्य था, उस जीवन के संस्कार उसमें विद्यमान थे, विद्युत् आवेश द्वारा उन्हें केवल जाग्रत् कर लिया गया।

डॉ० पेनफील्ड के पास ऐसा रोगी आया जिसे मिर्गी आती थी। उसका आपरेशन करके उन्होंने देखा कि जब मिर्गी आती है तो एक विशेष नस ही उत्तेजित होती है, उसे काटकर अलग कर दिया तो वह रोगी सदा के लिए अच्छा हो गया। बाद में पेनफील्ड ने बताया कि मस्तिष्क में कई अरब प्रोटीन अणु पाए जाते हैं, इन प्रोटीन अणुओं में औसत आयु ७० वर्ष के लगभग सवा अरब सैकंड होते हैं, इन क्षणों में जाग्रत् स्वप्न में वह जो कुछ देखता, सुनता और अनुभव करता है, वह सब मस्तिष्क के कार्यालय में जमा रहता है और उसमें से किसी भी अंश को विज्ञान की सहायता से पढ़ा जाना संभव है। मस्तिष्क के १० अरब स्नायु

कोशों में अगणित आश्चर्य संग्रहीत हैं, उन सबकी विधिवत् जानकारी रिकार्ड करने वाला कोई यंत्र बन सका तो जीव किन-किन योनियों में कहाँ-कहाँ जन्म लेकर आया है और उसने कब, क्या पाप, क्या पुण्य किया है, उस सबकी जानकारी प्राप्त करना संभव हो जायेगा। उन सबकी याददाश्त दिलाने वाला सहस्रार में बैठा हुआ वह 'क्रिस्टल' मात्र है, जिसे हमारे धर्म-ग्रंथों में सूत्रात्मा कहते हैं।

असाधारण ज्ञान, असाधारण कार्य प्रणाली और मस्तिष्क की विलक्षण रचना से जहाँ जीवात्मा के अनेक रहस्यों का ज्ञान होता है, वहाँ उसके दूर-दर्शन और इंद्रियातीत ज्ञान के भी अनेक प्रमाण पाश्चात्य देशों में संकलित व संग्रहीत किए गए हैं। 'दि न्यू फ्रांटियर्स ऑफ माइंड" के लेखक श्री जे० वी० राइन ने दूर-दर्शन के तथ्यों का वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक दोनों तरह से अध्ययन किया और यह पाया कि कुछ मामलों में अभ्यास के द्वारा ऐसे प्रयोग ५० प्रतिशत से अधिक सत्य पाए गए, जबकि स्वप्नों एवं मनोवेगों द्वारा भविष्य दर्शन की अनेक घटनाओं को शत-प्रतिशत पाया।

स्वप्नावस्था में हमारे शरीर के सारे क्रिया-कलाप अंतर्मुखी हो जाते हैं। उस समय भी मस्तिष्क जाग्रत् अवस्था के समान ही क्रियाशील रहता है, यदि उस स्थिति में देखे हुए दृश्य सत्य हो सकते हैं तो यह मानना ही पड़ेगा कि आत्म-चेतना का कभी अंत नहीं होता, वह एक सर्वव्यापी और अतींद्रिय तत्त्व है, पर संपूर्ण तन्मात्राओं की अनुभूति उसे होती है।

उक्त घटना श्री राइन महोदय के एक प्रोफेसर द्वारा बताई गई, जब वे स्नातक थे। बाद में वह लिखते हैं कि मैं जब पेन्सलवेनिया के पहाड़ों पर रहता था तो मुझे भी अनेक निर्देश और संदेश इसी प्रकार अदृश्य शक्तियों द्वारा भेजे हुए मिलते थे।

एक अन्य प्रोफेसर की धर्मपत्नी का भी इसी पुस्तक में उल्लेख है और यह बताया है कि वह जब अपनी एक सहेली के घर ब्रिज खेल रही थीं तो उन्हें एकाएक लगने लगा जैसे उनकी बालिका किसी गहरे संकट में हो। उन्होंने बीच में ही उठकर टेलीफोन से घर से पूछना चाहा, पर सहेली के आग्रह पर वे थोड़ी देर खेलती रहीं। इस बीच उनकी मानसिक परेशानी काफी बढ़ जाने से खेल बीच में ही छोड़कर टेलीफोन पर गईं और अपनी नौकरानी से पूछा लड़की ठीक है, उसने थोड़ा रुककर कहा—हाँ ठीक है। इसके बाद वे फिर खेलने लगीं, खेल समाप्त कर, जब वे लौटी तो पता चला कि एक बड़ी दुर्घटना हो गयी थी। उनकी लड़की पिता के साथ कार में आ रही थी, वह खेलते-खेलते शीशे के बाहर लटक गई और काफी सफर उसने उसी भयानक स्थिति में पार किया। जब एक पुलिस वाले ने गाड़ी रुकवाई, तब पता चला कि लड़की मजबूती से कार की दीवार पकड़े न रहती, तो किसी भी स्थान पर वह कार से कुचलकर मर गई होती। नौकरानी ने कहा चूँकि बच्ची सकुशल थी, इसलिए आपको परेशानी से बचाने के लिए झूठ बोलना पड़ा।

यह घटनाएँ यह विश्लेषण भी हमें मानव मस्तिष्क की उसी अमर सत्ता की ओर ले जाते हैं; जिधर ले जाने का प्रयास वैज्ञानिक आइंस्टीन ने अपने सापेक्षवाद सिद्धांत (थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी) के द्वारा पहुँचाने का प्रयत्न किया। दोनों का उद्देश्य जीवन की अमरता और ज्ञान रूप में मनुष्य के मस्तिष्क में विद्यमान सहस्रार का ही परिचय कराना है, भले ही उतनी सूक्ष्म जानकारी अभी वैज्ञानिकों को नहीं मिल पाई हो।

● मस्तिष्क विकास की संभावना

मानवी मस्तिष्क की छोटी-सी थैली में इतना विशाल रत्न भंडार भरा हुआ है कि उसका सदुपयोग कर सकने वाला देवोपम

जीवन जी सकता है। बहुमूल्य वस्तुएँ हों, पर उनका महत्त्व विदित न हो अथवा उपयोग न आता हो तो फिर उनका होना न होना बराबर है। वनवासी महिला को कीमती हीरा सड़क पर पड़ा मिल जाए तो छोटा-सा चमकदार पत्थर भर प्रतीत होगा और वह टुकड़ा जहाँ-तहाँ ठुकराया जाता रहेगा।

मस्तिष्क में सोचने की शक्ति रहती है, इसे हर कोई जानता है। अधिक जानकारी बढ़ाने के लिए पढ़ने-लिखने और सीखने-सिखाने का क्रम भी चलता है, उतने भर से भी पेट भरने और निर्वाह करने की सुविधा मिल जाती है। पर यदि इससे गहरा उतरा जा सके और चिंतन को उत्कृष्टता के साथ जोड़ा जा सके तो सामान्य स्थिति का निर्धन व्यक्ति भी उस स्तर का बन सकता है, जिसे संत, सज्जन एवं श्रद्धास्पद कहा जा सके।

प्रेरणा शक्ति मस्तिष्क में रहती है। चिंतन की दिशा जिस ओर मुड़ती है, उसी प्रकार की गतिविधियाँ विनिर्मित होने लगती हैं, कौन किस प्रकार का जीवन जी रहा है, इसे देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उसकी चिंतन धारा किस दिशा में बह रही है ? जीवन का स्वरूप जो कुछ भी है, व्यक्ति के चिंतन की प्रतिक्रिया भर है।

मस्तिष्क की गहराई में एक सीढ़ी और नीचे उतरा जाए तो प्रतीत होगा कि उसमें मणि-मुक्तकों का अजस्र भांडागार भरा पड़ा है। उसमें वह सब भी बहुत कुछ है, जिसे अद्भुत कह सकते हैं। यदि इन परतों को समझा जा सके और उनसे संबंध बनाकर, उपयोग में लाया जा सके तो कोई भी व्यक्ति अपने को सामान्य स्थिति से ऊँचा उठाकर, असामान्य बनने में सफलता प्राप्त कर सकता है।

मस्तिष्कीय संरचना पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि वह मांस-पिंडी नहीं वरन् जीवंत विद्युत् भंडार है। उसमें चल रही

हलचलें ठीक वैसी ही हैं जैसी किसी शक्तिशाली बिजली घर की होती हैं।

खोपड़ी की हड्डी से बनी टोकरी में परमात्मा ने इतनी महत्त्वपूर्ण सामग्री सँजोकर रखी है कि उसे जादू की पिटारी कहने में कोई अत्युक्ति नहीं होगी। शरीर के अन्य किसी भी अवयव की अपेक्षा उसमें सक्रियता, चेतना और संवेदनशीलता की इतनी अधिक मात्रा है कि उसे मानवीय सत्ता का केंद्र बिंदु कहा जा सकता है।

मस्तिष्क को दो भागों में विभक्त माना जा सकता है। वह जिसमें मन और बुद्धि काम करती है। सोचने, विचारने, तर्क, विश्लेषण और निर्णय करने की क्षमता इसी में है। दूसरा भाग वह है जिसमें आदतें संग्रहीत हैं और शरीर के क्रियाकलापों का निर्देश निर्धारण किया जाता है। हमारी नाड़ियों में रक्त बहता है, हृदय धड़कता है, फेंफड़े श्वास-प्रश्वास क्रिया में संलग्न रहते हैं, मांस-पेशियाँ सिकुड़ती फैलती हैं, पलक झपकते-खुलते हैं, सोने-जागने का, खाने-पीने और मल-मूत्र त्याग का क्रम अपने ढर्रे पर अपने आप स्वसंचालित ढंग से चलता रहता है, पर यह सब अनायास ही नहीं होता, इसके पीछे वह निरंतर सक्रिय मन नाम की शक्ति काम करती है, जिसे अचेतन मस्तिष्क कहते हैं। इसे ढर्रे का मन कहते हैं। शरीर के यंत्र-अवयव अपना-अपना काम करते रहने योग्य कल-पुर्जों से बने हैं, पर उनमें अपने आप संचालित रहने की क्षमता नहीं है। यह शक्ति उन्हें मस्तिष्क के इस अचेतन मन से मिलती है। विचारशील मस्तिष्क तो रात को सो जाता है, विश्राम ले लेता है, नशा पीने या बेहोशी की दवा लेने से मूर्छाग्रसित हो जाता है। उन्माद, आवेश आदि रोगों से ग्रसित को भी वही होता रहता है। डॉक्टर इसी को निद्रित करके आपरेशन करते हैं। किसी अंग विशेष में सुन्न करने की सुई लगाकर भी इस बुद्धिमान् मस्तिष्क तक सूचना पहुँचाने वाले

ज्ञान-तंतु संज्ञा शून्य कर दिए जाते हैं, फलतः पीड़ा का अनुभव नहीं होता और आपरेशन हो जाता है। पागलखानों में इस चेतन मस्तिष्क का ही इलाज होता है। अचेतन की एक छोटी परत ही मानसिक अस्पतालों की पकड़ में आई है, वे इसे प्रभावित करने में थोड़ा-बहुत सफल होते जा रहे हैं। किंतु उसका भाग प्रत्येक नियंत्रण से बाहर है। पागल लोगों के शरीर की भूख, मल-त्याग, श्वास-प्रश्वास, रक्त-संचार तथा पलक झपकना आदि क्रियाएँ अपने ढंग से होती हैं, मस्तिष्क की विकृति का शरीर के सामान्य क्रम संचालन पर बहुत कम असर पड़ता है।

मस्तिष्क में इतनी जानकारियाँ भरी रहती हैं कि यदि किसी मानवकृत कंप्यूटर में उतना सा-संग्रह किया जाए तो धरती के क्षेत्रफल जितने चुंबकीय टेप की उसमें आवश्यकता पड़ेगी, किंतु उसे उभारना उत्तेजित करना डी० एन० ए० (डी० आक्सीराइवो न्यूक्लिक ऐसिड) और आर० एन० ए० (राइवोन्यूक्लिक एसिड) के एक इंजेक्शन से ही संभव हो सकता है। स्वीडन के गोडेनवर्ग यूनिवर्सिटी के प्राध्यापक होलकर ने यह सिद्ध किया है कि मानवी मस्तिष्क की स्थिति पत्थर की लकीर नहीं है। उसकी क्षमता को रासायनिक पदार्थों की सहायता से घटाया-बढ़ाया और सुधारा-बिगाड़ा जा सकता है।

इसी प्रसुप्त क्षमता को विकसित करने के लिए योगाभ्यास की साधनाएँ प्रयुक्त होती हैं, उनके कारण चिंतन में उत्कृष्टता और प्रखरता उत्पन्न करने के दोनों प्रयोजन पूरे होते हैं।

मिशीगन विश्वविद्यालय के डॉ० बर्नाड एग्रानोफ से सुनहरी मछलियों पर यह प्रयोग किया कि उन्हें यदि भोजन के बाद प्यूरोनाइसिन नामक औषधि खिला दी जाए तो वे यह भूल जाती हैं कि वे भोजन कर चुकीं। कुछ कुत्तों को स्मृतिनाशक दवा खिलाई गई तो वे अपने घर और मालिक को भी भूल गए, जिन्हें वे बहुत प्यार करते थे। यह प्रयोग अभी मनुष्यों पर एक

सीमा तक ही सफल हुए हैं, दवा का असर रहने तक ही कारगर रहते हैं, पर सोचा यह भी जा रहा है कि किन्हीं प्रयोजनों की मृत्यु, अपमानजनक घटना, शत्रुता या भयंकर क्षति की चित्त को विक्षुब्ध करते रहने वाली दुःखद घटनाओं को स्थायी रूप से विस्मृत कराने के लिए मस्तिष्क के उस भाग को मूर्छित कर दिया जाए, जहाँ वे जमकर बैठी हुई हों। इसी प्रकार मंद बुद्धि लोगों के लिए स्मरण शक्ति बढ़ाने के उपाय औषधि जगत् में खोजे जा रहे हैं। यदि यह सफल हो सके तो छात्रों को पाठ याद करने के श्रम से छुटकारा मिल जाएगा और वे एक बार पुस्तक पढ़कर ही परीक्षा भवन में पूरे उत्साह और विश्वास के साथ प्रवेश कर सकेंगे।

इस छोटी-सी कोठरी को एक प्रकार से बहुमूल्य रत्नों में भरी हुई तिजोरी कहा जा सकता है। इस पोटली में इतना कुछ भरा है, जिसका सहज ही मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। दुःख इसी बात का है कि बाहर के जड़-पदार्थों के संबंध में खोजा जाता है और उनका संग्रह तथा उपयोग-उपभोग करने की ललक लगी रहती है, पर अंतर्जगत् में दृष्टि डालकर यह नहीं देखा जाता कि अपने भीतर बहुमूल्य संपदा भरी पड़ी है। बाहर से जो कुछ जितने श्रम के, जितने मनोयोग के मूल्य पर प्राप्त किया जा सकता है, उससे कहीं कम प्रयत्न से अंतर्जगत् खोजा जा सकता है और कहीं अधिक पाया जा सकता है।

एलेक्ट्रिकल स्टीम्यूलेशन ऑफ ब्रेन (ई० एस० वी०) पद्धति के अनुसार कई एशियन विश्वविद्यालयों ने आंशिक रूप से मस्तिष्क की धुलाई (ब्रेन वाशिंग) में सफलता प्राप्त कर ली है। अभी यह बंदर, कुत्ते, बिल्ली, खरगोश, चूहे जैसे छोटे स्तर के जीवों पर ही प्रयोग किए गए हैं। आहार की रुचि, शत्रुता, मित्रता, भय, आक्रमण आदि के सामान्य स्वभाव को जिस प्रकार चरितार्थ किया जाना चाहिए, उसे वे बिलकुल भूल जाते हैं और

विचित्र प्रकार का आचरण करते हैं। बिल्ली के सामने चूहा छोड़ा गया तो वह आक्रमण करना तो दूर उससे डरकर एक कोने में जा छिपी। क्षणभर में एक-दूसरे पर खूनी आक्रमण करना; एक आध मिनट बाद परस्पर लिपटकर प्यार करना, यह परिवर्तन उस विद्युत् क्रिया से होता है, जो उसके मस्तिष्कीय कोषों के साथ संबद्ध रहती है। यही बात मनुष्यों पर भी लागू हो सकती है। मानव मस्तिष्क अपेक्षाकृत अधिक परिष्कृत होता है, उसमें प्रतिरोधक शक्ति भी अधिक होती है। इसलिए उसमें हेर-फेर करने के लिए प्रयास भी कुछ अधिक करने पड़ेंगे और पूर्ण सफलता प्राप्त करने में देरी भी लगेगी, पर जो सिद्धांत स्पष्ट हो गये हैं; उनके आधार पर यह निश्चित हो गया है कि मनुष्य को भी जैसा चाहे सोचने, मान्यता बनाने और गतिविधियाँ अपनाने के लिए विवश किया जा सकता है। निर्धारित रसायन तत्त्वों को पानी में घोलकर पिलाया जाता रहे तो किसी तानाशाह शासक की इच्छानुकूल समस्त प्रजा बन सकती है। फिर विचार-प्रसार की आवश्यकता न रहेगी वरन् अन्न, जल, औषधि आदि के माध्यम से कुछ रसायन भर लोगों के शरीर में पहुँचाने की आवश्यकता पड़ेगी, वे मस्तिष्क में पहुँचकर वैसा ही परिवर्तन कर देंगे जैसा वैज्ञानिकों या शासकों को अभीष्ट होगा, तब अभावग्रस्त स्थिति में भी जनता अपने को रामराज्य जैसी सुखद स्थिति में अनुभव करती रह सकती है। यदि लड़ाकू पीढ़ी बनानी हो तो उस देश का हर नागरिक दूसरे देशों पर आक्रमण करने के लिए आतुर हो सकता है।

चाहे हम सो रहे हों या जग रहे हों, हर समय तीन पौंड भारी मस्तिष्क—मेरुदंड एवं लगभग दस अरब तंत्रिकाओं द्वारा देह की समस्त क्रियाओं का नियंत्रण एवं संचालन करता रहता है। उसे करीब २० वॉट विद्युत् ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है; जो ग्लूकोज एवं ऑक्सीजन से प्राप्त होती है।

वैज्ञानिकों की दृष्टि में हर विचार, हर आकांक्षा और हर अनुभूति एक विद्युत् हलचल अथवा रासायनिक प्रक्रिया है। क्रिया-कलाप को इलेक्ट्रो-एन्सीफैलो ग्राफ (ई० सी० जी०) यंत्र द्वारा जाना जा सकता है और यह समझा जा सकता है कि मस्तिष्क में किस स्तर की विचारधारा प्रवाहित हो रही है।

यह चिंतन का परिष्कार हुआ। मनोविकारों को धोया जा सकता है और मस्तिष्क की स्थिति ऐसी बन सकती है, जिसमें मात्र देवत्व का ही साम्राज्य हो। यह प्रयत्न रासायनिक पदार्थों और विद्युत् धाराओं के आधार पर भौतिक विज्ञानियों द्वारा किए जा रहे हैं। अध्यात्म विज्ञान द्वारा यह कार्य और भी अधिक ऊँचे एवं उपयोगी ढंग पर किया जाना संभव है।

कुछ वर्ष पूर्व इच्छा-शक्ति के चमत्कारों का प्रत्यक्ष प्रदर्शन करने के लिए डॉ० राल्फ एलेक्जेंडर ने एक सार्वजनिक प्रदर्शन मैक्सिको नगर में किया था। इस प्रदर्शन में प्रायः सभी प्रतिष्ठित पत्रों के प्रतिनिधि और अन्यान्य वैज्ञानिक, तार्किक, बुद्धिजीवी तथा संभ्रांत नागरिक आमंत्रित किए गए थे। प्रदर्शन यह था कि आकाश में छाए बादलों को किसी भी स्थान से, किसी भी दिशा में हटाया जा सकता है और उसे कैसी ही शक्ल दी जा सकती है। बादलों को बुलाया और भगाया जा सकता है।

नियत समय पर प्रदर्शन हुआ। उस समय आकाश में एक भी बादल नहीं था। पर प्रयोग कर्त्ता ने देखते-देखते घटाएँ बुला दीं और दर्शकों की माँग के अनुसार बादलों के टुकड़े अभीष्ट दिशाओं में बखेर देने और उनकी विचित्र शकलें बना देने का सफल प्रदर्शन किया। इस अद्‌भुत प्रदर्शन की चर्चा उन दिनों अमेरिका के प्रायः सभी अखबारों में मोटे हैडिंग देकर छपी थी।

उपरोक्त प्रदर्शन पर टिप्पणी करते हुए एक प्रसिद्ध विज्ञानी एलेन एप्रागेट ने 'साइकोलॉजी' पत्रिका में एक विस्तृत लेख

छापकर यह बताया कि मनुष्य की इच्छा शक्ति अपने ढंग की एक सामर्थ्यवान विद्युत्धारा है और उसके आधार पर प्रकृति की हलचलों को प्रभावित कर सकना पूर्णतया विधि सम्मत है। इसे जादू नहीं समझा जाना चाहिए।

यह हुई मस्तिष्क की प्रखरता। इसे यदि समझा जा सके और आंतरिक अलौकिकता को समुन्नत किया जा सके तो उसका परिणाम वैसा ही हो सकता है, जैसा कि भूतकाल के योगी और तपस्वियों ने अपनी अलौकिकताएँ प्रकट करते हुए सिद्ध किया था।

❑ ❑

जितना समझते हैं, उससे अधिक समझें

❖

मास्को (रूस) की एक अधेड़ महिला मिखाइलोवा सिर्फ घड़ी की ओर देखकर उसका चलना रोक सकती थी। वह मेज पर रखे बर्तनों और भोज्य पदार्थों को भी खिसका सकती थी। दिशा सूचक यंत्र (कंपास) की सुई जो केवल चुंबकीय शक्ति (मैगनेटिक फील्ड) से ही प्रभावित होती है, उसे भी अपनी इस शक्ति से घुमा देती थी।

रूसी 'मास्कोवास्काया' समाचार पत्र ने इस महिला की गहरी ध्यान-शक्ति पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि "मनुष्य के मन में वस्तुतः विज्ञान से परे विलक्षण शक्तियाँ विद्यमान हैं। उनका विकास करके वर्तमान वैज्ञानिक उपकरणों को ही नहीं पछाड़ा जा सकता वरन् मानव से संबंधित गहन आध्यात्मिक तथ्यों का भी पता लगाया जा सकता है।"

प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान् लुई जकालियट जो भारतवर्ष में बहुत दिन रहे और योग-विद्या का गहन अन्वेषण किया, उन्होंने गोविंद स्वामी नामक एक दक्षिण योगी के संबंध में लिखा है—"पानी से भरे हुए घड़े को वह दूर बैठकर अपनी मानसिक या दैवी शक्ति से आगे-पीछे और ऊपर हवा में उठा देता था। उसके आदेश पर जल से भरा हुआ घड़ा भी अधर में लटक जाता हुआ मैंने देखा है। भारतीय योगियों के इन विलक्षण करतबों को कई लोग मनोरंजन की दृष्टि से देखते हैं, पर मुझे उस कौतूहल के पीछे किसी बड़े रहस्य की अनुभूति होती है। ऐसा लगता है मनुष्य के मन में वह शक्तियाँ हैं, जिनका विकास यदि किया जा सके तो मनुष्य जीवन के अनेक दार्शनिक सत्यों का रहस्य जान सकता है।"

वैज्ञानिक और डॉक्टर भी यह मानते हैं कि शरीर में इंद्रियों की चेतना भी अस्थायी महत्त्व की है। स्थायी रूप से दृष्टि, श्रवण, घ्राण, प्रेरक और संवेदन सभी क्षमताएँ मस्तिष्क में विद्यमान हैं।

थैलामस नामक एक पिंडली (गैंग्लियन) भीतरी मस्तिष्क में होती है, जो सिर के केंद्र में अवस्थित है, यही स्थान सभी तन्मात्राओं के ठहरने का स्थान (स्टेशन) है, यहीं से पीनियल ग्रंथि निकलती है, जो देखने का काम करती है। पीनियल ग्लैंड को तीसरा नेत्र भी कहते हैं। पिट्यूटरी ग्लैंड्स और सुषुम्ना शीर्षक (मेडुला ऑफ ऑब्लांगॉटा) जो शरीर के संपूर्ण अवयवों का नियंत्रण करती हैं, वे सब भी मन से ही संबंधित हैं। मस्तिष्क का यदि यह केंद्र काट दिया जाए तो शरीर के अन्य सब संस्थान बेकार हो जाएँगे।

विज्ञान और शरीर रचनाशास्त्र (एनाटॉमी) की उपरोक्त आधुनिक जानकारियों का यद्यपि काफी विस्तार हो चुका है, किंतु योग पद्धति और भारतीय तत्त्व-दर्शन की जानकारी की तुलना में यह उपलब्धियाँ समुद्र में एक बूँद की तरह है। भारतीय तत्त्व-वेत्ताओं ने मन को सर्वशक्तिमय इंद्रियातीत ज्ञान का आधार और अनंत परब्रह्म का ही लघु रूप माना है। मन की शक्तियों को ही ब्रह्म में तादात्म्य कर देने से हाड़-मांस का मनुष्य भगवान् हो जाता है। उसकी शक्तियों का आश्चर्यजनक और चमत्कारिक विकास इसी अवस्था पर होता है।

५ अक्टूबर, १९५० को लंदन में एक भारतीय महिला शंकुतला देवी, जिन्हें गणित की जादूगरनी (विजार्ड ऑफ मैथमेटिक) कहा जाता है, टेलीविजन पर अपना कार्यक्रम प्रस्तुत कर रही थीं। तभी एक सज्जन ने उन्हें एक गणित का प्रश्न हल करने को कहा। बिना एक क्षण का विलंब किए, उन्होंने कहा यह प्रश्न गलत है। यह प्रश्न ब्रिटेन के बड़े-बड़े गणिताचार्यों ने तैयार किया था, इसलिए सब लोग एकदम आश्चर्य में डूब गये—प्रश्न गलत कैसे हो सकता है ? बी० बी० सी० कार्यक्रम के आयोजनकर्ता ने प्रश्न की जाँच कराई तो वह विस्मित रह गया कि प्रश्न सचमुच गलत है।

उसने भी यह माना कि—"हम जितना समझ पाए हैं, मन की शक्ति और सामर्थ्य उससे बहुत अधिक है।"

● बौद्धिक क्षमताओं का भंडार

सन् १७२२ में जापान के मुसाशी प्रांत में एक बालक ने जन्म लिया। नाम रखा गया हनावा होकीची। दुर्भाग्यवश यह बालक जबकि वह कुल सात वर्ष का ही था-अंधा हो गया। फिर भी उसने पढ़ा, सुनकर पढ़ा और अपनी प्रतिभा का इतना अधिक विकास किया कि वह संसार के प्रमुख विद्वानों की श्रेणी में जा पहुँचा। उसकी स्मरण शक्ति को दैवी स्मरण शक्ति की उपमा दी जाती है और ६४ वर्ष की आयु तक अध्यापन करने वाले इस महापंडित के बारे में कहा जाता है कि वह ४००००० हस्तलिपि की सूची तैयार करा सकता था। इन सूची-पत्रों से जिन्हें उसे केवल एकबार ही पढ़कर सुनाया गया था, उसने मुंशी रिंजू नामक एक २८२० खंड की पुस्तक तैयार की। १९१० में इस पुस्तक का दूसरा संस्करण छपा था। जापान के लोगों ने बड़े सम्मान के साथ अपने घरों में इसे रखा है।

ग्रीक में ऐसा ही एक व्यक्ति हुआ है पारेसन—उसने मिल्टन की सारी कृतियों को रट लिया था और उन्हें न केवल पेज नंबर एक से लेकर दो, तीन, चार को सुनाता जा सकता था वरन् पीछे से अर्थात् पेज नंबर सौ से निन्यान्बे, अट्ठानबे, सत्तानबे की ओर-भी सुनाता चला जा सकता था। विलक्षण स्मृति का एक उदाहरण है—गंबेटा जो श्रीमती रुथ की पुस्तक का एक-एक शब्द पीछे से सुना सकता था। विक्टर ह्यूगो और साहित्यकार ओसियन की पुस्तकें भी केवल एक बार पढ़कर, उसने दुबारा पीछे बोलकर सुना दीं। लोग आश्चर्य किया करते थे और कहते थे कि गंबेटा के मस्तिष्क में टेप की तरह कोई इलेक्ट्रोमैगनेटिक पट्टी है, जिसमें उसका पढ़ा हुआ एक-एक अक्षर रिकॉर्ड हो जाता है। वह भी

केवल एक बार पढ़ने से, जबकि साधारण व्यक्ति के लिए पुस्तक का एक-एक अनुच्छेद ही कंठस्थ करना कठिन हो जाता है।

म्यूनिच की राष्ट्रीय लाइब्रेरी के संचालक जोसेफ बनहार्ड डंकन अपनी सहायता के लिए विभिन्न भाषाओं के सचिव रखते थे। सभी नौ सचिवों को एक साथ बैठाकर नौ भाषाओं पर नौ विभिन्न विषयों पर आफिसियल कार्यवाही या और जो कुछ भी नोट कराना होता था, नोट कराते चले जाते थे। इतना ही नहीं, बाइबिल उन्हें पूर्णतया कंठाग्र थी और आगे-पीछे कहीं से भी कोई भी पेज खोलकर उनसे पूछा जाता तो वहाँ से आगे का अंश धड़ल्ले से बोलने लगते थे। भाषा और ज्ञान की तौल होती तो उनके मस्तिष्क का वजन करना कठिन हो जाता, ऐसा लोग कहा करते थे। इतनी बड़ी लाइब्रेरी की करोड़ों पुस्तकें उनके मस्तिष्क में थीं, यहाँ तक कि रखने का स्थान तक उन्हें मालूम रहता था।

१७६७ में जन्मे प्रसिद्ध जर्मनी कवि, लेखक और राजनीतिज्ञ नबाब कार्ल बिल्हेम वन हंबोल्ट का विवाह ३८ वर्ष की अवस्था में एक बहुत ही गुणवान स्त्री कैरोलिन वान डैक्रोडेन के साथ हुआ। विवाह के बाद से ही उसने अपनी प्रिय पत्नी के सम्मान में प्रतिदिन १०० पंक्तियों की कविता लिखना प्रारंभ किया और यह क्रम पूरे ४४ वर्ष तक जब तक वह जिया, जारी रखा। ६ वर्ष का जीवन हाबोल्ट ने विधुर का बिताया, इस बीच वह प्रतिदिन अपनी स्त्री के मजार पर और १०० पंक्तियाँ लिखने का क्रम जारी किए रहा। तमाम जीवन में उसने १६०६००० पंक्तियाँ लिखीं। इतनी कविताओं की पंक्तियाँ यदि छपाई जाएँ तो अखंड ज्योति साइज के ५५७७ फर्मे अर्थात ४४६१६ पेज के बराबर मोटी पुस्तक बैठेगी। इस मोटाई का अनुमान लगाना हो तो अखंड ज्योति के ५८ वर्ष १ माह के समस्त अंकों को एक के ऊपर एक को चुनना होगा, यह ऊँचाई लगभग २५ फुट बैठेगी, जबकि कविताओं में कोई भी पंक्ति दुबारा उपयोग में नहीं लाई गई।

एक बार फ्रांस की एक अदालत में एक मुकदमा पेश हुआ। अपराधी के बचने की कोई उम्मीद नहीं थी तथापि उसकी पैरवी करने वालों ने सुप्रसिद्ध एटार्नी लुईस बर्नार्ड को अपना वकील चुनकर मुकदमा लड़ा। सैनिक अदालत से उसे सजा हो गई। एटार्नी ने अदालत से याचना की कि उसे मुकदमा राजा के सामने ले जाना है अतएव सजा ५ दिन के लिए रोक दी जाए क्योंकि राजा ५ दिन के लिए बाहर थे। अदालत ने यह बात अस्वीकार कर दी। एटार्नी ने उस पर तर्क करने की आज्ञा माँगी और वह मिल गई। उसने अपना तर्क जूरी के सामने लगातार १२० घंटे तक अर्थात् पूरे ५ दिन ५ रात तक जारी रखा। इस बीच उसने कानून शास्त्र के दुनिया भर के पन्ने जबानी अदालत के सामने रखकर अपनी आश्चर्यजनक बौद्धिक क्षमता का सिक्का जमा दिया। संभव है वह और भी बोलता, पर इसी बीच राजा साहब आ गए और इस प्रकार उन्हें महाराज के सामने पेश होने का समय भी मिल गया और इसी विना पर क्षमादान भी।

कहते हैं कि स्वामी रामतीर्थ अमेरिका जा रहे थे, तब एक दिन जहाज में दो अंग्रेजों में झगड़ा हो गया। उनका मुकदमा पेश हुआ और गवाह माँगा गया तो दोनों ने इन साधु की उपस्थिति की बात कही। उनसे पूछा गया तो उन्होंने कहा—मुझे यह तो मालूम नहीं कि गलती किसकी है, पर उन्होंने अपनी-अपनी भाषा में जो कुछ कहा था, वह उन्होंने हूबहू वही शब्द, उसी टोन में सुना दिया।

परमा (इटली) में इसी प्रकार सन् १४६४ में फ्रांसिस्को मैरिया ग्रापाल्डो नामक व्यक्ति पैदा हुआ। इस व्यक्ति की विचित्र विशेषता यह थी कि वह एक ही समय में अपने हाथों से एक कापी के दोनों ओर के पेजों पर अलग-अलग कविताएँ लिखता हुआ चला जाता था। लोग कहते थे कि ग्रापाल्डो के दो मस्तिष्क हैं। अब तो विज्ञान ने भी यह सिद्ध कर दिया है। मस्तिष्क दाएँ-बाएँ दो भागों में विभक्त है। दोनों अलग-अलग काम करते रहने में सक्षम हैं। इतने पर भी

इस रहस्य पर पर्दा ज्यों का त्यों बना हुआ है कि मस्तिष्क की यह विलक्षण विशेषताएँ क्या केवल मात्र स्वाध्याय, शिक्षण और अभ्यास का ही परिणाम हैं अथवा मस्तिष्क में निवास करने वाले किसी अलौकिक आध्यात्मिक तत्त्व की यह विशेषताएँ हैं।

इसका उत्तर खोजने के लिए किसी सैद्धांतिक विवेचन के पूर्व कुछ उदाहरण जान लेना आवश्यक है।

(१) १७२४ में स्काटलैंड में डंकन मैक इंटायर नामक व्यक्ति जन्मा। वह स्काटलैंड का इतना बड़ा कवि माना जाता था जितना भारत में सूर और तुलसी। इतना होते हुए भी वह न तो लिख सकता था और न ही पढ़ सकता था, क्योंकि उसने कहीं से भी शैक्षणिक योग्यता प्राप्त नहीं की थी।

(२) होमर और सुकरात न केवल संत थे वरन् कबीर की तरह कवि और साहित्यकार भी थे। कबीर ने कलम और कागज नहीं छुआ था और उनकी लिखी उलटवाँसियाँ तथा पद आज एम० ए०, बी० ए० की पुस्तकों में पढ़ाए जाते हैं। अपनी मस्तिष्कीय सृजन वे मस्तिष्क में ही लिखकर रखते थे। कागज कलम से तो उसे औरों ने लिखा। कैंटरबरी के पादरी टॉमस फ्रेमर ने ३ महीने में पूरी बाइबिल पढ़कर कंठस्थ कर ली थी। पर होमर और सुकरात ने तो न कभी पढ़ा था और न लिखा था, यह इस बात का प्रमाण है कि बौद्धिक क्षमताओं का आधार शैक्षणिक ज्ञान नहीं वरन् कोई मस्तिष्कीय अध्यात्म का प्रतिफल है। उस शक्ति का विकास केवल आध्यात्मिक साधनाओं में क्रियाओं पर आधारित है-मात्र अक्षर अभ्यास पर नहीं।

भारतीय योगदर्शन जिस ऋतंभरा-प्रज्ञा की बात कहता है और बताता है कि मनुष्य ब्रह्मचर्य और विभिन्न योग-साधनाओं द्वारा अपनी बौद्धिक सक्षमता और सूक्ष्मता इतनी अधिक बढ़ा सकता है कि वह न केवल ऊपर जैसी विलक्षण क्षमताओं और सिद्धियों का सहज ही स्वामी बन सकता है वरन् वह हर किसी के मन की बात

जान सकता है। भूत और भविष्य को इस प्रकार जान सकता है, मानो वह वर्तमान में आँखों के सम्मुख घटित हो रहा हो।

कंप्यूटर मशीन (संगणक) को आज बड़ी आश्चर्य की दृष्टि से देखा जाता है किंतु मन की शक्ति की तुलना में उनका मूल्य और महत्त्व एक कौड़ी से अधिक नहीं है। यह लोगों ने तब जाना, जब श्रीमती शकुंतला देवी से एक सज्जन ने पूछा—"८ फरवरी १९३६ को रविवार था या शनिवार" कोई और व्यक्ति होता तो इतनी गणना (कैलकुलेशन) करने में उसे पूरे दो घंटे लगते, कंप्यूटर भी १०-१५ सैकिंड तो लेता ही, किंतु शकुंतला जी को बताते एक सैकिंड भी नहीं लगा होगा।

शकुंतला देवी बंगलौर के एक प्रतिष्ठित परिवार में जन्मीं। अन्नामलाई विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री बी० एस० शास्त्री ने उन्हें "जीते जागते आश्चर्य" का विशेषण दिया है। सिडनी (आस्ट्रेलिया) स्थित न्यू साउथ वेल्स विश्वविद्यालय में उनकी प्रतिद्वंद्विता २० हजार पौंड मूल्य के संगणक (कंप्यूटर) से हुई। यह कंप्यूटर विद्युत् चालित था और उसका आपरेशन प्रसिद्ध गणितज्ञ श्री आर० जी० स्मार्ट और वेरी थार्नटन कर रहे थे किंतु जब भी कोई प्रश्न पूछा जाता था, शकुंतला उसका उत्तर दे देती थीं, जबकि मशीन के उत्तर की प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। शकुंतला के उत्तर शत-प्रतिशत (सेंट-पर-सेंट) सही पाकर, वे सब चौंक पड़े और कहने लगे—"सचमुच मन में ऐसी कोई विलक्षण क्षमता है, जिसका विकास भारतीय योग पद्धति से करके, मनुष्य सर्वज्ञ बन सकता है।" शकुंतला जी अब तक ४२ अंकों की संख्याओं का २०वाँ रूट (वर्गमूल) तक निकालने में सफल हुई हैं। यह गणित जगत् के लिए लोहा मनवाने जैसी बात है, किंतु शकुंतला जी की मान्यता है कि यह विकेंद्रित मन की साधारण-सी-शक्ति है। मन की नाप-तोल करना कठिन है। वह एक सर्वसमर्थ तत्त्व जैसा कुछ है।

इन्हीं बातों को देखकर ही वैज्ञानिक शरीर में आत्मा जैसी किसी सर्वव्यापक शक्ति के अस्तित्व की बात स्वीकार करने लगे हैं, भले ही अभी उसका विस्तृत अध्ययन वे लोग न कर पाए हों। अमेरिका के एक दिल बदल विशेषज्ञ डॉ० एम० डी० कुले ने चारलोट्सबिल (वर्जीनियाँ) में डाक्टरी का अध्ययन करने वाले सैकड़ों छात्रों के सामने बोलते हुए बताया कि "मनुष्य की आत्मा का वास मस्तिष्क में है।" उन्होंने मृत्यु के संबंध में अपना स्पष्टीकरण देते हुए बताया कि "मृत्यु एक अकेली घटना नहीं बल्कि वह एक प्रक्रिया है और वह मस्तिष्क के मरने के बाद आरंभ होती है। शरीर के कई अंग जैसे दिल तो मृत्यु के कई मिनट बाद तक जीवित रह सकता है किंतु मस्तिष्क के अणुओं की चेतना समाप्त होते ही मनुष्य का जीवन समाप्त हो जाता है।

इस बात को हमारे पितामह ऋषि और योगी काफी समय पूर्व जान गये थे। समाधि अवस्था में आत्म-चेतना को ब्रह्मांड (खोपड़ी) में चढ़ाकर, बिना साँस लिए हुए कहीं भी दबे पड़े रहने के अनेक प्रयोग भारत में हुए हैं, उनका कहीं अन्यत्र वर्णन करेंगे। यहाँ डॉ० एम० डी० कुले की बात का समर्थन करते हुए यदि यह कहा जाए कि मनुष्य शरीर के प्रत्येक सेल के अंदर जो चेतना है, उस सामूहिक प्रक्रिया का ही नाम मन या जीवन है और उसमें सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता जैसे विलक्षण गुण भी विद्यमान हैं।

फ्रैंक रेन्स दुनिया की भाषाओं से पूर्णतया अनभिज्ञ थे किंतु आप दुनिया की कोई भी भाषा किसी भी लहजे में बोलें—बिना एक सैकंड का अंतर किए वही शब्द उसी लहजे में आपके साथ बोलते चले जाते। ओठों की फड़कन देखकर भी कोई यह अनुमान नहीं लगा सकता कि वह व्यक्ति क्या बोलेगा, फिर यदि उस भाषा का ज्ञान न हो, जिसमें वक्ता बोले, तब तो वह जो कहेगा, इसका बिलकुल भी अनुमान नहीं लगाया जा सकता, पर आप चाहे पीठ

फेरकर खड़े हो जाएँ या बीच में पर्दा लगाकर-फ्रैंक रेन्स आपके साथ ही उन शब्दों को दोहराते हुए (कोइन्सिडेंस) चले जाते। देखने में ऐसा लगता जैसे एक ही ग्रामोफोन से दो लाउडस्पीकरों का संबंध हो। टेलीविजन के कुछ कार्यक्रमों में वक्ता बोलने के साथ गाने भी लगे तो श्री फ्रैंक रेन्स ने उसी तान और स्वर में गा भी दिया। एक बार विख्यात हास्य अभिनेता जेरी ल्यूविस ने एक कार्यक्रम संचालित किया, उसमें लोलो ब्रिगिडा ने भी भाग लिया। उक्त महिला कई भाषाएँ बोल सकती थी। फ्रैंक रेन्स उन सब भाषाओं को दोहराते गये। लोलोब्रिगिडा ने कुछ बनावटी शब्द, जिनका न तो कोई अर्थ हो न किसी भाषा के हों, बोलना प्रारंभ किया तो लोग आश्चर्यचकित रह गए कि फ्रैंक रेन्स वह शब्द भी उसी तरह स्वर मिलाकर बोलता चला जा रहा था।

दूसरा अमुक शब्द बोलेगा, इसकी इंद्रियातीत जानकारी फ्रैंक को क्यों हो जाती थी ? भाषा न जानने पर भी वह अनजाने शब्द किस तरह बोल लेता था ? यह दो विलक्षण आश्चर्य हैं, जिनकी व्याख्या करने में डॉक्टर, वैज्ञानिक और अनेक विशेषज्ञ भी असफल रहे हैं। फ्रैंक रेन्स कहते थे—"मैं स्वयं भी नहीं जानता कि इस विलक्षण शक्ति का स्रोत क्या है ?" पर यह भारतीय तत्त्व-वेत्ताओं और सिद्धपुरुषों के लिए बहुत छोटी-सी बात है। मन की एक धारा का विकास इस सामर्थ्य का आधार है और कुछ हो या न हो पर इससे इतना तो सिद्ध हो ही जाता है कि मन में कोई ऐसी अज्ञात शक्ति अवश्य है, जो दूसरों के मन में जो कुछ है और जो कुछ नहीं भी है, वह सब जान सकती है।

मन में ऐसी-ऐसी असंख्य सामर्थ्यों का भंडार छुपा हुआ है। मन ही सब सिद्धियों का साधन है, मन ही भगवान् है, मन का पूर्ण विकास ही एक दिन मनुष्य को अनंत सिद्धियों-सामर्थ्यों का स्वामी बना देता है, पर इसके लिए गहन संयम, साधना और तपश्चर्या के बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता।

● मन की शक्ति अव्याख्येय

पदार्थ को शक्ति के रूप में अब मान्यता मिल चुकी है और यह विज्ञान के प्रारंभिक विद्यार्थियों को तो नहीं, पर मूर्धन्य स्तर पर यह स्वीकार्य है कि यह विश्व एक शक्ति की दो धाराएँ माना जाता रहा है। उसी परंपरा के अनुसार एक को भौतिक और दूसरी को प्राणिज माना गया है। दोनों आपस में पूरी तरह गुँथी हुई हैं। इसलिए जड़ में चेतन का और चेतन में जड़ का आभास होता है। वस्तुतः वे दोनों ज्वार-भाटे की तरह लहरों के मूल और ऊर्ध्व में नीचाई-ऊँचाई का अंतर दीखने की तरह हैं और एक अविच्छिन्न युग्म बनाती हैं। यद्यपि उन दोनों की व्याख्या अलग-अलग रूपों में भी की जा सकती है और उनके गुण, धर्म पृथक् बताए जा सकते हैं। एक को जड़ दूसरी को चेतन कहा जा सकता है। इसी विभेद की चर्चा अध्यात्म ग्रंथों में परा और अपरा प्रकृति के रूप में मिलती है।

मस्तिष्कीय विद्या के, मनोविज्ञान के आचार्य न्यूरोलॉजी, मेटाफिजिक्स, साइकोलॉजी आदि के संदर्भ में मस्तिष्कीय कोशों और केंद्रों की दिलचस्प चर्चा करते हैं। उनकी दृष्टि में वे कोश ही अपने आप में पूर्ण हैं। यदि यही ठीक होता तो मृत्यु के उपरांत भी उन कोशों की क्षमता उसी रूप में या अन्य किसी रूप में बनी रहनी चाहिए थी, पर वैसा होता नहीं। इससे प्रकट है कि इन कोशों में मनःतत्त्व भरा हुआ है। जीवित अवस्था में वह इन कोशों के साथ अतीव सघनता के साथ घुला रहता है। जब इन दोनों का अलगाव हो जाता है तो उस मृत्यु की स्थिति में मस्तिष्क के चमत्कारी कोश सड़ी-गली श्लेष्मा भर बनकर रह जाते हैं।

मनःशास्त्र के यशस्वी शोधकर्त्ता कार्ल गुस्तायजुंग ने लिखा है—मनुष्य के चेतन और अचेतन के बीच की शृंखला बहुत दुर्बल हो गई है। यदि दोनों के बीच सामंजस्य स्थापित किया जा सके तो प्रतीत होगा कि व्यक्ति की परिधि छोटे-से शरीर तक सीमित नहीं

वरन् वह अत्यधिक विस्तृत है। हम हवा के सुविस्तृत आयाम में साँस लेते और छोड़ते हैं। उसी प्रकार विश्वव्यापी चेतन और अचेतन की संयुक्त सत्ता के समुद्र में ही हम अपना व्यक्तित्व पानी के बुलबुले की तरह बनाते, बिगाड़ते रहते हैं। जैसे हमारी अपनी कुछ रुचियाँ, प्रवृत्तियाँ और आकांक्षाएँ हैं, उसी प्रकार विश्वव्यापी चेतना की धाराएँ भी किन्हीं उद्देश्यपूर्ण दिशाओं में प्रवाहित हो रही हैं।

गैरल्ड हार्ड ने आइसोटोप ट्रेलर्स के संबंध में हुई नवीनतम शोधकार्य की चर्चा करते हुए कहा है कि जीव विज्ञान अब हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि शरीर की कोशिकाओं और परमाणुओं पर मनःशक्ति का असाधारण नियंत्रण है। चेतन और अचेतन के रूप में जिन दो धाराओं की विवेचना की जाती है वस्तुतः वे दोनों मिलकर एकपूर्ण मनःशक्ति का निर्माण करती हैं। यह मनःचेतना सहज ही नहीं मरती वरन् एक ओर तो वंशानुक्रम विधि के अनुसार गतिशील रहती है। दूसरी ओर मरणोत्तर जीवन के साथ होने वाले परिवर्तनों के रूप में उसका अस्तित्व अग्रगामी होता है। मनःचेतना का पूर्ण मरण पिछले दिनों संभव माना जाता रहा है। अब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचने ही वाले हैं कि चेतना अमर है और उसका पूर्ण विनाश उसी तरह संभव नहीं जिस प्रकार कि परमाणुओं से बने पदार्थों का।

भौतिक विज्ञान के नोबल पुरस्कार विजेता श्री पियरे दि काम्ते टु नाउ ने विज्ञान और व्यक्ति के बीच सामंजस्य स्थापित करते हुए लिखा है—अब हमें यह मानने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि मनुष्य में अपनी ऐसी चेतना का अस्तित्व मौजूद है जिसे आत्मा कहा जा सके। यह आत्मा, विश्वात्मा के साथ पूरी तरह संबद्ध है। उसे पोषण इस विश्वात्मा से ही मिलता है। चूँकि विश्व चेतना अमर है इसलिए उसकी इकाई आत्मा को भी अमर ही होना चाहिए।

'ह्यूमन डेस्टिनी' ग्रंथ में लेखक 'लेकोम्ते टू नाउ' ने जीव सत्ता की स्वतंत्र व्याख्या अगले कुछ ही दिनों में प्रचलित विज्ञान मान्यताओं के आधार पर ही की जा सकने की संभावना व्यक्त की है और कहा है कि हम इस दिशा में क्रमशः अधिक द्रुतगति से बढ़ रहे हैं।

प्राणी का 'अहम्' उसके स्वतंत्र अस्तित्व का सृजन करता है और जब तक वह बना रहता है, तब तक उसकी अंतिम मृत्यु नहीं हो सकती। स्वल्प एवं स्थिति का परिवर्तन होता रह सकता है। इस अहम् (ईगो)—सत्ता का स्वल्प निर्धारण अब इलेक्ट्रो डायनेमिक सिद्धांतों के अंतर्गत प्रमाणित किया जाने लगा है। इस व्याख्या के अनुसार यह मानने में कठिनाई नहीं होती कि जीव सत्ता जन्म-मरण के चक्र में घूमती हुई अपनी आकृति-प्रकृति में हेर-फेर करती रहकर भी अपनी मूल सत्ता को अक्षुण्ण बनाए रह सकती है।

'दि सूट्स ऑफ कोइन्सिडेन्स' ग्रंथ के लेखक महामनीषी आर्थर कोइन्सिडेंस ने जीव सत्ता के आयाम को स्वीकार किया है और कहा है कि प्राणी सत्ता की विशेषता को सर्वथा आणविक या रासायनिक नहीं ठहराया जा सकता।

'यू डु टेक इट विद यू' के लेखक डिविट मिलर भी इस बात से सहमत हैं कि मस्तिष्कीय कोशों को प्रभावित करने वाली एक अतिरिक्त चेतना का उसी क्षेत्र में घुला-मिला किंतु स्वतंत्र अस्तित्व है।

मृत्यु के उपरांत प्राणी की चेतना-शक्ति उसी प्रकार बची रह सकती है जैसे कि अणु गुच्छक एक पदार्थ से टूट-बिखरकर किसी अन्य रूप में परिणत होते रहते हैं। शक्ति के समुद्र इस विश्व में प्राणियों की सत्ता बुलबुलों की तरह अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाती हैं, विकसित करती है तो समयानुसार अपने मूल उद्गम में लीन हो जाती है। जड़-चेतन मिश्रित इस शक्ति सागर को यदि अलग से

कहना आवश्यक हो तो एक को 'प्रकृति' और दूसरे को 'पुरुष' कह सकते हैं।

अपने समय के मूर्धन्य खगोलवेत्ता डॉ० गुस्ताफ स्ट्रोमवर्ग की पुस्तक 'दि सोल ऑफ यूनीवर्स' में जीवन क्या है ? विशेषतया मनुष्य क्या है ? इस प्रश्न पर प्रस्तुत वैज्ञानिक दृष्टिकोण की मार्मिक समीक्षा की है। वे विज्ञान से पूछते हैं—क्या मनुष्य ब्रह्मांड की कुछ धूलि का ताप और रासायनिक घटकों की औंधी-सीधी क्रिया-प्रक्रिया मात्र है ? क्या वह प्रकृति के किसी अनिच्छित क्रिया के अवशेष उच्छिष्ट से बना खिलौना मात्र है ? क्या वस्तुतः लक्ष्यहीन, अर्थहीन बेतुका राग मात्र है ? क्या उसकी सत्ता आणविक और रासायनिक हलचलों के बनने-बिगड़ने वाले संयोगों की परिधि तक ही सीमित है ? अथवा वह इससे आगे भी कुछ है ?

उन प्रश्नों के सही उत्तर प्राप्त करने के लिए स्ट्रोमवर्ग ने तत्कालीन विज्ञान की दार्शनिक विवेचना करने वाले मनीषियों से भी परामर्श किया। उन्होंने इस संबंध में एफ० आर० मोस्टन, वास्टर आडम्स, आर्थर एडिंगटन, थामस हैट मार्गन, जान बूदिन, कारेलहजर ओ० एल० स्पोसलर आदि प्रख्यात मनीषियों के सामने अपना अंतर्द्वंद्व रखा और जानना चाहा कि विज्ञान सम्मत दर्शन द्वारा मानव चेतना की इतनी ही व्याख्या हो सकती है, जितनी कि वह अब तक की गई है अथवा उससे आगे भी कुछ सोचा जा सकता है।

अपनी जिज्ञासा, तुष्टि, कठिनाई, समीक्षा और विवेचना का एक विचारणीय स्वरूप स्ट्रोमवर्ग के 'दि सोल ऑफ यूनीवर्स' ग्रंथ में है। इस पुस्तिका की भूमिका लिखते हुए आइंस्टीन ने प्रस्तुत जिज्ञासा को युग-चिंतकों के सामने अति महत्त्वपूर्ण चुनौती माना है और कहा है हमें किन्हीं पूर्वाग्रहों से प्रभावित हुए बिना

संभावित सत्य के आधार पर ही इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए।

फ्रायड ने प्रेरणाओं का प्रधान स्रोत 'काम' को माना था और उसकी व्याख्या 'सेक्स' के रूप में की थी। इसके बाद उन्होंने अपने ही जीवन में यौन लिप्सा को आगे बढ़ाकर कामना, इच्छा तथा वासना तक पहुँचा दिया। इसके बाद जुंग और एडलर ने उस काम वृत्ति की व्याख्या कामाध्यात्म के रूप में की और उसे आनंद, उल्लास की सहज सुलभ प्रवृत्ति के साथ जोड़ दिया।

जुंग का कथन है कि आत्मा की अमरता को यद्यपि अभी भी प्रयोगशालाओं में सिद्ध नहीं किया जा सका, फिर भी ऐसी अगणित अनुभूतियाँ मौजूद हैं, जो यह बताती हैं कि आदमी मरण-धर्मा नहीं है, वह मौत के बाद भी जीवित रहता है।

मनःशास्त्र का विकास क्रमिक गति से आगे बढ़ा है। आरंभ में विज्ञान ने एक जाग्रत् चेतन मन को स्वीकारा था। पीछे अचेतन मन की खोज की गई। इस अचेतन की भी कई शाखा-प्रशाखाएँ खोजी गईं। सबकांशस—अर्ध-चेतन और रैशियल अनकांशस—जातीय अचेतन; इसकी प्रमुख धाराएँ इन दिनों सर्वविदित हैं। फ्रायड की कल्पना पर सुपरईगो—उच्चतर अहं और सेन्सर—अंकुश तथ्य छाए रहे। उन्होंने इसी परिधि में मनःशास्त्र की संरचना की है। तब से अब तक पानी बहुत आगे बह गया और मनोविज्ञान ने कितने ही नये-नये रहस्यों का उद्घाटन किया।

जर्मनी के मनःशास्त्री हेन्सार्वेडर ने अतींद्रिय क्षमता के अनेकों प्रमाण संग्रह करके, यह सिद्ध किया है कि मनुष्य की सूक्ष्म सत्ता उससे कहीं अधिक संभावनाओं से भरी-पूरी है जैसी कि अब तक जानी जा सकी है। टेलीपैथी के शोधकर्त्ता रेने वार्कोलियर ने मनःचेतना को ज्ञात भौतिकी से ऊपर वाले सिद्धांतों पर आधारित बताया है। वे कहते हैं—"मन की व्याख्या पदार्थ विज्ञान के प्रचलित सिद्धांतों के सहारे नहीं हो सकती।"

विश्व विख्यात लेखक एच० जी० वेल्स ने अपनी पुस्तक "इन दि डेज ऑफ दि क्रामेट" में यह संभावना व्यक्त की है कि निकट भविष्य में मनुष्य का मन और दृष्टिकोण अधिकाधिक परिष्कृत होता चला जायेगा। तब मनुष्य में सहृदयता, सहयोग-भावना तथा दूरदर्शिता बढ़ती जायेगी। फलस्वरूप समाज का ढाँचा और मानवी आचार उपयोगी बन जायेगा, जिसे अब की अपेक्षा काया-कल्प जैसा कहा जा सके। तब कोई युद्ध का समर्थन न करेगा और चिंतन की दिशा सहयोग पूर्वक शांति एवं प्रगति के लिए प्रयुक्त हो सकने वाले आधारों को ढूँढ़ने के लिए प्रयुक्त होगी।

शंकराचार्य कहते थे—स्व और पर का भेद भ्रांति है। हम सब भिन्न दीखते भर हैं, वस्तुतः सब एक ही सघन सूत्र में पिरोए हुए मनकों की तरह हैं। 'ईसा कहते थे—अपने पड़ौसी को प्यार करो ताकि तुम्हारा विकसित प्यार तुम्हें निहाल कर दे।' बुद्ध ने कहा था—'करुणा से बढ़कर मनुष्य के पास और कोई दिव्य संपदा नहीं। जो ममता और करुणा से भरा है वही दिव्य है।'

जीव चेतना का लक्ष्य और विकास क्रम का पूर्णत्व इसी स्तर पर विज्ञान को भी पहुँचा देगा, जो ऋषियों और तत्त्वदर्शियों ने बताया था। यदि विज्ञान का उद्देश्य सत्य की खोज है तो उसे आत्मा की वर्तमान स्वीकृति को परमात्मा स्तर प्राप्त करने तक भी पहुँचना होगा। इसके लिए कल न सही परसों सही, प्रतीक्षा की जा सकती है।

❑ ❑

मानवी सामर्थ्य और प्रकृति से भी बृहत्तर शक्ति !

एक समय था जब क्यूबा में रहने वाला सेनर एवेलिनो पेरेज नामक एक व्यक्ति, व्यक्तियों और वैज्ञानिकों के आकर्षण और शोध का बहुचर्चित विषय बन गया था। पेरेज की यह विशेषता थी कि वह अपनी इच्छानुसार अपनी एक आँख या एक साथ दोनों आँखों की पुतलियाँ दो इंच बाहर निकाल लेता था और उन्हें वापस यथास्थान बैठा लेता था। इससे उसकी देखने की शक्ति में किसी भी तरह का दबाव नहीं पड़ता था।

यौगिक अभ्यास और प्राणायाम द्वारा शरीर और प्राणों पर नियंत्रण करके, उन्हें मनमाने ढंग से मोड़ने-मरोड़ने के यौगिक प्रदर्शन हमारे देश में कोई अनोखी घटनाएँ नहीं मानी जातीं। यहाँ का प्रायः सामान्य नागरिक भी इस तरह के चमत्कारों से परिचित मिलेगा। कई शिक्षित लोग इसे उनका अंध-विश्वास भी मान लेते हैं, पर जिन्होंने भी योग साहित्य का अध्ययन किया होगा, शरीरस्थ चक्रों, गुच्छकों, उपत्यिकाओं का जिन्हें थोड़ा भी विज्ञान ज्ञात होगा, वे इस तरह के आश्चर्यजनक लगने वाले प्रदर्शनों की पृष्ठभूमि भली प्रकार अनुभव कर सकते हैं। अंतःस्त्रावी ग्रंथियों (ग्लैंड्स) के बारे में आधुनिक शरीरशास्त्रियों ने अब तक जो जानकारियाँ की हैं, उनसे भी यह सिद्ध हो गया है कि इन स्त्रावों (हारमोन्स) पर पूरी तरह नियंत्रण कर लेना मनुष्य के लिए संभव हुआ तो एक दिन वह आयेगा, जब हनुमान जी की तरह मनुष्य एक क्षण में 'मसक समान' और दूसरे क्षण 'शत योजन मुख सुरसा' बन जाना बिल्कुल साधारण बात हो जायेगी।

यह सब मनुष्य की प्रचंड इच्छा शक्ति, संकल्प और इनके द्वारा विकसित अभ्यासों की उपलब्धियाँ मात्र हैं। डॉक्टर लोग अब

भी यह नहीं समझ सके कि पेरेज ने इस तरह आँख की पेशियों पर नियंत्रण कैसे प्राप्त कर लिया ? जबकि यह मात्र नियंत्रण का कौतुक है। पेरेज की आँखें बचपन में कमजोर थीं, उसने अपने ही आप आँखों को इधर-उधर घुमाकर व्यायाम प्रारंभ किया और यह क्षमता विकसित कर ली। इच्छा शक्ति सचमुच एक महान् दैत्य है। यदि वह अपनी पर आ जाए, संकल्प रूप धारण कर ले तो मनुष्य ऐसे-ऐसे एक नहीं लाख चमत्कार दिखाई देने वाले परिणाम प्रस्तुत कर सकता है। किसी व्यक्ति का स्वस्थ होना, किसी का जीवन भर रोगी बने रहना, किसी का प्रखर बुद्धि विद्यार्थी होना, किसी का मंद बुद्धि, किसी का सफलता के उच्च शिखर पर पहुँच जाना और दूसरे का जीवन भर परमुखापेक्षी बने रहना, उस मनोबल के ही प्रतिफल हैं, जो मनुष्य को कुछ से कुछ बना देते हैं।

केन्या के संबरू नामक एक व्यक्ति ने निश्चय कर लिया कि वह जिंदगी भर कभी बैठेगा नहीं। २८ वर्ष का था तब उसने यह प्रतिज्ञा की थी। खाना, पीना, टट्टी, पेशाब सब उसने खड़े ही खड़े किया। लेटने या खड़े रहने की प्रतिज्ञा मृत्युपर्यंत निबाहने की आन अब उसकी सामान्य आदत बन गई है, जबकि सामान्य व्यक्तियों के लिए उसकी चर्चा भी कम विस्मयकारक नहीं होगी। बुफेलो अमेरिका के टाममीलिफ के एक भी हाथ नहीं था, पर वह विश्व का माना हुआ गोला चैंपियन था। उसने १८ बार चैंपियनशिप जीती। योगी हरिदास अपनी जीभ से भ्रू-मध्य का स्पर्श कर लेते थे। अफ्रीका के सार्स जिंजेस ने अपने दोनों ओठ इतने बढ़ा लिए थे कि वह उसकी पत्नी के लिए पूरी तकिया का काम देते थे। ओठों के इस राक्षसी आकार के कारण जिंजेस न तो कड़ा खाना खा सकता था, न बोल सकता था। ऊपर से कहीं भाग न जाए, इस भय से उसकी पत्नी उसके ओंठों को तकिया बनाकर सोती थी ताकि वह कहीं खिसकने का प्रयास करे तो तुरंत नियंत्रित किया जा सके।

अच्छे हों या बुरे परिणाम, संकल्प शक्ति को जुटाकर मनुष्य अतिमानव बन सकता है—इसमें संदेह नहीं। इतना होने पर भी उसे सर्वशक्तिमान् नहीं कह सकते। इसलिए कि उसकी इच्छा और माँग के विरुद्ध आनुवांशिकी, भौतिकी और पराभौतिकी क्षेत्र में ऐसी सैकड़ों घटनाएँ घटती रहती हैं, जिनका नियंत्रण तो दूर वह उस रहस्य तक को नहीं जान पाता कि उसका कारण क्या है ? जबकि निसर्ग में उस तरह का स्वयं कोई सुनिश्चित सिद्धांत नहीं होता। उदाहरण के लिए १८२६ में लंदन में चार्ल्सवर्थ नामक एक बच्चे ने जन्म लिया। सामान्यतः ४ वर्ष की आयु ऐसी होती है, जब बच्चा अच्छी तरह बोल भी नहीं पाता किंतु चार्ल्सवर्थ ने आनुवांशिकी के सारे वैज्ञानिक नियमों को उठाकर एक ओर फेंक दिया। चार वर्ष में ही वह पूर्ण वयस्क हो गया। उसके मूँछ, दाढ़ी भी निकल आई। उसके व्यवहार बातचीत में भी पूरी तरह बुजुर्गपन टपकने लगा था। सात वर्ष की आयु में उसके संपूर्ण बाल सफेद हो गये और उसकी मृत्यु हो गई।

आनुवांशिकी का सिद्धांत यह है—बच्चे में यह तो हो सकता है कि उसके माता-पिता के न होकर बाबा, नाना, परबाबा, परनाना, दादी, परदादी, नानी, परनानी अथवा इससे ऊपर वहाँ तक जहाँ से उस वंश के आविर्भाव का महापुरुष पहुँचता है, भले ही वह ब्रह्माजी ही क्यों न हों, के आनुवांशिकीय लक्षण अवश्य होने चाहिए, जबकि विश्व इतिहास में यह अपनी तरह का एकमेव उदाहरण है, जो मनुष्य की संकल्पशक्ति से भी परे किसी विधेय-सत्ता की ओर संकेत करता है।

एक ही रंग, रूप, आकृति के एक से अधिक व्यक्ति हो सकते हैं, पर उनमें ऊँचाई, निचाई, तिल, मस्से, नाक, भौं, दाँत, माथा, बाल कहीं न कहीं, कोई न कोई ऐसा अंतर अवश्य रह जाता है, जिससे उनकी पहचान सरल हो जाती है, किंतु सन् १८६५ में न्यूयार्क में एक साथ एक ही मुहल्ले में हेनरी, थामस और वेर्नन

नाम के तीन ऐसे व्यक्ति निकल आए जिनकी पहचान स्वयं उनके माता-पिता, भाई-बहिनों के लिए दुःसाध्य हो गई। कई बार थामस को घर पहुँचने में देर हो जाती तो उसकी माँ ढूँढ़ने निकलती और सामने पड़ जाता, हेनरी तो वह उसी की पिटाई करते घर ले जाती। बेचारा हेनरी कहता भी कि मैं हेनरी हूँ, पर माँ उसकी आवाज तो पहचानती थी फिर वो कैसे धोखा खा सकती थी ? पर सचमुच में खाती वह धोखा ही थी। उन तीनों की आवाज भी एक जैसी थी। आवाजों से भी उन्हें पहचानना कठिन था।

अब तक वे काफी बड़े हो गये थे। लोगों ने समझा अब दाढ़ी, मूँछ में तो कुछ फर्क आएगा ही, पर न जाने किस सत्ता का निर्माण है ? यह जो मनुष्य की सारी कल्पनाओं को भी लाँघकर कल्पनातीत सृष्टि का स्रजन करता रहता है। तीनों की मूँछ, दाढ़ी भी एक ही तरह की थी। अंत में दाढ़ी, मूँछों की आकृति भिन्न-भिन्न रखने का उन तीनों ने निश्चय किया। हेनरी ठोढ़ी के नीचे के बाल तो साफ रखता था, पर दोनों गालों के नीचे दाढ़ी समानांतर लटकती। उन्हें मूँछ इस तरह जोड़ती थीं कि दाढ़ी, मूँछ का आकार अंग्रेजी के एच की तरह बन जाता था। उसके नाम का पहला अक्षर भी यही था। थामस मूँछों के अतिरिक्त केवल ठोढ़ी के नीचे मुसलिम कट दाढ़ी रखता था। दोनों गाल के बाल साफ रखने से उसकी मूँछ और दाढ़ी की आकृति अंग्रेजी के 'टी' वर्ण के आकार की हो गई और इस तरह उसकी पहचान संभव हुई। वर्नन ने तीसरी युक्ति निकाली, उसने अपनी मूँछ तो सफाचट करा ली और दाढ़ी के बालों की इस तरह कटिंग कराता कि वह दोनों कनपटियों से चलकर ठोढ़ी में अंग्रेजी के वर्ण 'वी' की-सी आकृति बना देती। इस तरह मानवीय बुद्धि ने एक समस्या का निराकरण तो कर लिया, पर लगता है, उस रहस्य का कुछ महत्त्व ही नहीं समझता कि ऐसा किस नियम के अंतर्गत होता है कि भिन्न-भिन्न परिस्थितियों, वातावरण, माता-पिता, आहार-विहार के होते हुए भी एक-सी शक्ल का होना वह भी इतने साम्य गुणों वाले कि उनकी

पहचान तक न हो सके। किसी बहुत ही कुशल कलाकार की तूलिका का ही चमत्कार हो सकता है। उस पूर्ण परमात्मा-रचनाकार को जानना ही मानव जीवन का लक्ष्य बताया गया है, पर मनुष्य तो अपने सांसारिक बखेड़ों में इतना उलझ गया है कि इस तरह की दुर्लभ घटनाएँ देखकर भी उसका विवेक जाग्रत् नहीं होता।

इस तरह के विलक्षण अपवाद मनुष्य ही नहीं, जीव-जंतुओं में भी मिलने लगें तो विकासवाद के सिद्धांत का एक दूसरा प्रश्न चिह्न लग जाता है और उसके समर्थकों के दावों पर संदेह होने लगता है, कहीं उन्होंने उपहास में ही तो दर्शन को विकृत नहीं कर डाला।

ऐली (इंग्लैंड) एच० जी० बाय० के घर मुर्गी ने ऐसा बच्चा दिया जिसके चार पैर थे। तमाम उम्र इस बच्चे ने यों ही सामान्य स्थिति में बिताई। प्रजनन क्रियाएँ भी उसमें सम्मिलित थीं, पर उसकी संतानों में कहीं कोई इस तरह का अद्भुत देखने को नहीं मिला। मैनचेस्टर सागर में कैप्टेन जे० टी० बैनेट ने एक ऐसा कछुआ पकड़ा, जिसके दो सिर थे। यह कछुआ उन्होंने अपनी मृत्युपर्यंत पालकर रखा। ग्रींसबर्ग के बाल्टर रडिल मैन के पास एक ऐसी भेड़ थी, जिसके सारे शरीर में बाल उगते थे, किंतु पीठ के बिल्कुल ऊपरी हिस्से में विधिवत घास उगा करती थी। यह एक विलक्षण संरचना थी, जिसका कोई भी आनुवांशिकी आधार, शारीरिक त्रुटि या कारण ढूँढ़ पाना आज तक भी वैज्ञानिकों के लिए संभव नहीं हो पाया। यह वैसा ही कठिन कार्य है, जैसे—घड़े में जमाते दूध को बिलौने वाली रई से समुद्र-मंथन की बात सोची जाए ? सृष्टि विराट् है। मानवीय ज्ञान की सीमाएँ उतनी ही नगण्य हैं। अतएव सुनिश्चित अनुभूति प्राप्त न होने तक किसी को भी उस परम सत्ता पर अविश्वास नहीं करना चाहिए, जिसकी शक्ति से ही इस विलक्षण निर्माण की प्रक्रिया चलती है।

हस्तक्षेप प्राणि-सत्ता तक ही सीमित नहीं है। लगता है प्रकृति को भी इच्छानुसार बनाने और बदलने की शक्ति का कोई और उद्‌गम है। स्काटलैंड के डंकल्स नामक स्थान में १३ फुट लंबा, ७ फुट चौड़ा तथा ५ फुट ऊँचा एक पत्थर तीन छोटे-छोटे पत्थरों पर इस तरह टिका है, मानो कोई भीमकाय कछुआ चल पड़ने की तैयारी में हो । पुरातत्त्ववेत्ताओं के अनुसार यह पत्थर पिछले बीस लाख वर्षों से इसी तरह टिका हुआ है, जबकि इस बीच आए अंधड़ तूफानों ने सैकड़ों पहाड़ ढहा दिए, बिना किसी गणितीय आधार के ही यह तीन छोटे सिपाही खड़े अपने महान् सम्राट् की अभ्यर्थना करते जान पड़ते हैं।

एंडले फ्रांस में भी एक इसी तरह का बोल्डर (पत्थर) इस तरह नन्हें से आधार पर नाचते हुए लट्टू की-सी आकृति में खड़ा है, मानो उसे किसी विद्युत् चुंबकीय शक्ति ने चारों ओर से साध रखा हो। वैज्ञानिक उस बात की सब तरह जाँच कर चुके, पर वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके। विचित्र बात यह है कि यह पत्थर गजब की भविष्यवाणी भी करता है, मौसम साफ रहेगा तो वह अपनी उसी धुरी पर चुपचाप खड़ा रहेगा, किंतु तूफान आने को हो, तो वह धीरे-धीरे हिल-डुलकर उसकी सूचना दे देता है। उस स्थिति में भी उसका संतुलन यथावत् रहता है, जबकि कोई दूसरा पत्थर हो तो हाथ के रत्तीभर इशारे से सैकड़ों फीट दूर जा लुढ़क सकता है, पर उसे जोर देकर भी हटाया नहीं जा सका।

भारतीय वेद, पुराण और दर्शन कहते हैं—ईश्वर ने अपनी इच्छा शक्ति को मुखर करने के उद्देश्य से सृष्टि की रचना की। अनेकानेक जीव-योनियों की संरचना वस्तुतः इच्छाशक्ति का ही खेल है। संभव है उससे सर्वशक्तिमान् सत्ता परमात्मा का अस्तित्व सिद्ध न हो, पर इंगलैंड के बाटफोर्ड नामक कस्बे में हुई एक घटना ने यह सिद्ध कर दिया है कि मानवीय इच्छा शक्ति किसी न किसी रूप में अति समर्थ सत्ता की ही संतान है। उसे परमात्मा, विश्वात्मा,

ब्रह्म, परमेश्वर कुछ भी कहें, वह विचार की ही श्रेणी का कोई श्रेष्ठ तत्त्व है। हुआ यह कि लिड नामक एक व्यक्ति को अंजीर बहुत प्रिय थे। उसकी मृत्यु होने लगी तो उसने कहा—अंजीर ने मुझे जीवन में अत्यंत तृप्ति प्रदान की है। मेरा मन है कि मेरे ताबूत में अंजीर का एक पौधा रखा जाए, मेरी आत्मा उसी से फूटे और इतने फल दे कि हजारों लोग उससे तृप्ति पाएँ।

ऐसी ही किया गया। लिड को जिस ताबूत में रखकर दफनाया गया, उसी में अंजीर का नन्हा-सा पौधा भी रख दिया गया। कुछ दिन बात समय के गर्भ में रहा, पर न जाने कैसे एक दिन ताबूत में बंद मिट्टी में दबा हुआ वह अंजीर का पौधा पृथ्वी को फाड़कर ऊपर निकल आया। जैसे-जैसे उसका विकास होता गया वैसे-वैसे कब्र फटती गई और एक दिन वह पूर्ण वृक्ष के रूप में उभर उठा। सचमुच सामान्य अंजीर वृक्षों की अपेक्षा; उसमें इतने अधिक, मीठे और बढ़िया अंजीर लगते हैं कि खाने वाला उस वृक्ष की याद अवश्य करता है। उसके अंजीरों पर किसी का प्रतिबंध नहीं रखा गया ताकि लिड की इच्छा की पूर्ति हो सके।

इच्छा शक्ति का यह अपने आप में सबसे अलग और अनूठा प्रमाण है। यह इच्छा शक्ति सभी बाधाओं और अवरोधों को पार करते हुए, अपने बल के अनुसार आगे बढ़ती व सुरक्षित रहती है।

● इच्छा शक्ति की अजेय सामर्थ्य

यों प्राणी प्रकृति की विपरीत चपेट में आकर अक्सर अस्तित्व गँवा बैठता है। वह नियति के उग्र परिवर्तनों का सामना नहीं कर पाता और विपरीत परिस्थिति के सामने अपने को निरीह असमर्थ अनुभव करता है, पर ऐसा तभी होता है, जब वह उस आपत्ति का सामना करने के लिए पहले से ही तैयार न हो।

यदि प्राणी को विपरीत, अनभ्यस्त परिस्थिति में रहने को विवश होना पड़े तो वह अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिए

क्रमशः ऐसे परिवर्तन उत्पन्न कर लेता है—ऐसी विशेषता का उत्पादन कर लेता है, जिसके आधार पर वह प्राणघातक समझी जाने वाली परिस्थितियों से भी तालमेल बिठा ले और अपना अस्तित्व कायम रख सके, सुविधापूर्वक निर्वाह कर सके।

जीवाणुओं की असह्य तापमान पर मृत्यु हो जाती है। वे अधिक उष्णता एवं शीतलता सहन नहीं कर सकते, यह मान्यता अब पुरानी पड़ चली है। पानी खौलने से अधिक गर्मी और २७० डिग्री से० से नीचे शीत पर जीवाणुओं की मृत्यु हो जाने की बात ही अब तक समझी जाती रही है। इसका कारण यह था कि शरीर में पाया जाने वाला ग्लिसरोद रसायन असह्य तापमान पर नष्ट हो जाता है और जीवाणु दम तोड़ देते हैं। अब वे उपाय ढूँढ़ निकाले गये हैं कि इस रसायन को ताप की न्यूनाधिकता होने पर भी बचाया जा सके और जीवन को अक्षुण्ण रखा जा सके।

अत्यधिक और असह्य शीतल जल में भी कई प्रकार के जीवित प्राणी निर्वाह करते पाए गए हैं। इनमें से प्रोटोजोआ, निमैटोड, क्रस्टेशिया, मोलस्का आदि प्रमुख हैं।

पेलोस्टोन की प्रयोगशाला मे लुईब्राक और टामस नामक दो सूक्ष्म जीव-विज्ञानी—बॉयोलॉजिस्ट यह पता लगाने में निरत हैं कि जीव सत्ता के कितने न्यून और कितने अधिक तापमान पर सुरक्षित रह सकने की संभावना है। वे यह सोचते हैं कि जब पृथ्वी अत्यधिक उष्ण थी, तब भी उस पर जीवन सत्ता मौजूद थी। क्रमशः ठंडक बढ़ते जाने से उस सत्ता ने विकास विस्तार किया है, पर इससे क्या ? अति प्राचीन काल में जब जीवन सत्ता थी ही तो वह विकसित अथवा अविकसित स्थिति में अपनी हलचलें चला ही रही होगी, भले ही वह अबकी स्थिति की तुलना में भिन्न प्रकार की अथवा पिछड़े स्तर की ही क्यों न रही हो ? विकसित प्राणी के लिए जो तापमान असह्य है, वह अविकसित समझी जाने वाली स्थिति में काम चलाऊ भी हो सकता है।

यदि यही तथ्य हो, फिर जीवन की मूल मात्रा को शीत, ताप के बंधनों से मुक्त माना जा सकता है और गीताकार के शब्दों में यह कहा जा सकता है कि आत्मा को न आग जला सकती है, न पवन सुखा सकता है, न जल डुबा सकता है। पंचभूतों की प्रत्येक चुनौती का सामना करते हुए, वह अपना अस्तित्व पूर्णतया सुरक्षित रख सकने में पूर्णतया समर्थ है।

समुद्र तट के सभी पर्वतीय क्षेत्रों में पाई जाने वाली धूसर रंग की 'एफिड्रिल' को ४५ डिग्री से ५१ डिग्री से० के बीच तापमान वाले गर्म जल में प्रवेश करते देखा गया है। यह प्राणियों के जीवित रहने को असंभव बनाने वाली गर्मी है। सामान्यतया धरती की सतह पर १२ डिग्री से० तापमान रहता है। प्राणियों को उतना ही सहन करने का आभास होता है। अधिक उष्ण या अधिक ताप के वातावरण में रहने वाले जंतुओं को स्थिति के अभ्यस्त ही कह सकते हैं।

एफिड्रिल मक्खी के अतिरिक्त कुछ जाति के बैक्टीरिया भी ऐसे पाए गए हैं, जो खौलते पानी के ९२° सेंटीग्रेड तापमान में भी मजे से जीवित रहते हैं। अमेरिका के येलोस्टोन नेशनल पार्क में स्थिति गर्म जल के झरने प्रायः इसी तापमान के हैं और उनमें जीवित बैक्टीरिया पाए गए हैं। इन गर्म झरने अथवा कुंडों में एक प्रकार की काई की मोटी परत जमी रहती है, जिसे हिंदी में शैवाल कहा जाता है। अंग्रेजी में उसका नाम एल्गी है। इसमें जीवन रहता है। आमतौर से वह ७५ डिग्री से० तक गर्म जल में मजे का निर्वाह करती है। बैक्टीरिया उसी के सहारे पलते हैं। एफिड्रिल मक्खी का प्रमुख भोजन यह एल्गी ही है। उसे प्राप्त करने के लिए वह उस असह्य तापमान के जल में डुबकी लगाती है और जले-झुलसे बिना अपना आहार उपलब्ध करती है।

यह तो हुई छोटे जीवों की बात अब अधिक कोमल समझे जाने वाले मनुष्यों की बात आती है, वह भी प्रकृति की असह्य कही

जाने वाली स्थिति में निर्वाह करने के लिए अपने को ढाल सकता है। उत्तरी ध्रुव प्रदेश में रहने वाले एस्कीमो लोग अत्यधिक शीत वाले तापमान में रहते हैं। भालू, हिरन और कुत्ते भी उस क्षेत्र में निवास करते हैं। वनस्पतियाँ और वृक्ष न होने पर पेट भरने के लिए मांस प्राप्त कर लेते हैं। इसके लिए उन्होंने बर्फ की मोटी परतें तोड़कर नीचे बहने वाले समुद्र में से मछली पकड़ने की अद्भुत कला सीख ली है और आयुध-साधन रहित होते हुए भी हिरन, भालू और कुत्ते का भी वे शिकार करना सीख गये हैं और लाखों वर्ष से उस क्षेत्र में निर्वाह कर रहे हैं।

दूसरे जीवों की तुलना में मनुष्य को अनेक अनुदान ऐसे उपलब्ध हैं, जिन्हें असाधारण ही कह सकते हैं। बुद्धि की विशेषता, इच्छा शक्ति, भाव संवेदना, लक्ष्य निर्धारण, स्मृति जैसी मस्तिष्कीय विशेषताएँ ऐसी हैं, जो अन्य प्राणियों को बहुत ही स्वल्प मात्रा में मिली हैं। उसके देखने तथा सुनने की शक्ति अत्यधिक संवेदनशील है। घ्राण शक्ति तो अन्य प्राणियों में अधिक है, पर वे मनुष्य जैसी उच्चस्तरीय दृष्टि श्रवण शक्ति का वरदान नहीं पा सके हैं। मनुष्य की मस्तिष्कीय संरचना की अन्य किसी प्राणी से तुलना नही की जा सकती। उसकी बनावट अपने आप में विलक्षण है।

अन्य प्राणी प्रकृति के आक्रमण को एक सीमा तक ही सहन कर सकते हैं और अधिक दबाव पड़ने पर दम तोड़ देते हैं, पर मानवी काया का निर्माण इतना लोचदार है कि वह विपन्न परिस्थितियों में भी निर्वाह कर सकता है और अपने आपको इस प्रकार ढाल सकता है, जिससे प्रकृति का दबाव उसे चुनौती न दे सके।

'न्यूरोफिजियोलॉजिकल बेसिस ऑफ माइंड' ग्रंथ में उदाहरणों और प्रमाणों में यह बताया गया है कि मनुष्य का सामान्य निर्वाह १५ डिग्री में होता है, पर वह १ हजार फुट से अधिक ऊँचाई पर जहाँ टेंप्रेचर—१५ डिग्री सेंटीग्रेड होता है तथा ऑक्सीजन की कमी

से असुविधा पड़ती है, वह वहाँ भी कुछ ही दिनों के अभ्यास से सरलतापूर्वक निर्वाह करने लगता है। यहाँ तक कि २० हजार फुट तक जहाँ-२५ सेंटीग्रेड तापमान रहता है, वहाँ भी जिंदा रह सकता है और २५ हजार से अधिक ऊँचाई पर जहाँ-४५ डिग्री सेंटीग्रेड शीत होता है, सामान्य बुद्धि के हिसाब से मनुष्य का जीवित रह सकना संभव नहीं, पर उसकी लोच ऐसी है, जो वहाँ भी जिंदा बनाए रह सकती है।

हिमालय पर रहने वाले हिम-मानव की जीवनचर्या भी कम रहस्यमय नहीं है। यह प्राणी मनुष्य जैसी आकृति-प्रकृति का है। उसे रीछ और मनुष्य का सम्मिश्रण कह सकते हैं। अत्यंत शीत भरे हिमाच्छादित प्रदेश में उतनी ऊँचाई पर वह रहता है, जहाँ साँस लेने के लिए ऑक्सीजन के सिलेंडर पीठ पर बाँधकर पर्वतारोही जाया करते हैं और खुली हवा में साँस लेना मृत्यु को निमंत्रण देना मानते हैं। लंबे समय से वह एकाकी जीवन जीता चला आ रहा है। युगीय सभ्यता से दूर रहते हुए भी उसने अपने रहस्यमय जीवन-क्रम को किसी प्रकार अक्षुण्ण बनाए ही रखा है।

हिमालय के उत्तुंग शिखरों पर रहने वाला हिम मानव अपने अस्तित्व के समय-समय पर अगणित परिचय देता रहा है। पर अभी तक उसे पकड़ने के प्रयास सफल नहीं हो सके। इस अद्भुत प्राणी के संबंध में अधिक जानने के लिए उसे निकट से देखना, समझना आवश्यक है। यह तभी संभव हो सकता है, जब वह पकड़ में आए। किंतु अति बुद्धिमान् समझे जाने वाले मनुष्य को भी यह हिम-मानव अभी तक चकमा ही देता आया है। उसके पकड़ने के प्रयत्नों को निष्फल ही बनाता रहता है। इतने पर भी हिम-मानव का अस्तित्व प्रायः असंदिग्ध ही समझा जाता है।

सन् १९७० की २५ मार्च को अन्नपूर्णा शिखर पर चढ़ाई करने और उस क्षेत्र की सबसे ऊँची चोटी पर विजय पताका फहराने के उद्देश्य से ब्रिटिश पर्वतारोहियों का एक दल अपनी दुस्साहस भरी

यात्रा कर रहा था। दल के लोग कैंप में विश्राम कर रहे थे। चंद्रमा की चाँदनी सारे हिमाच्छादित प्रदेश को आलोकित कर रही थीं। अभी वे लोग सोने भी न पाए थे कि हाथी जैसी भयानक आकृति अपने लंबी परछाई सहित उधर घूमती हुई दिखाई दी। खतरे की आशंका से वे लोग बाहर निकल आए और राइफलें तान लीं। गौर से देखने पर पाया गया कि यह प्राणी ठीक वैसा ही है जैसा कि हिममानव का वर्णन करते हुए समय-समय पर कहा या सुना जाता रहा है। आधा घंटे तक उसकी हरकतें दल ने शांतिपूर्वक देखी। उनका उद्देश्य मारना नहीं जानना था। सो उन्होंने आँखें भरकर देखा। थोड़ी देर में वह उछल-कूद करता हुआ पर्वत शृंखलाओं की ओट में गायब हो गया।

रात को पहरा देने की पद्धति अपनाकर, बारी-बारी से दल के लोग सोए तो सभी, पर आक्रमण का आतंक रात भर छाया रहा। प्रातःकाल वे लोग तलाश करने गए कि कुछ वास्तविकता भी थी या कोरा भ्रम ही था। उन लोगों ने मनुष्य जैसे किंतु बहुत बड़े साइज के पद-चिह्न देखे, जिसके उन लोगों ने फोटो लिए। वे फोटो कई प्रमुख पत्रों में उस देखे हुए विवरण के साथ प्रकाशित भी हुए।

इससे पूर्व सन् १९५८ में एक अमेरिकी पर्वतारोही दल विशेषतया हिम-मानव को जीवित अथवा मृतक किसी भी स्थिति में पकड़ने का उद्देश्य लेकर ही आया था। इस दल के एक सदस्य प्रो० टेंबा अपने साथ कुछ शेरपा लेकर एक क्षेत्र खोज रहे थे। उन्होंने आश्चर्य के साथ एक झरने के किनारे बैठे देखा। वह पानी में से मेंढ़क और मछलियाँ बिना चबाये निगल रहा था। प्रो० टेंबा ने उस रात में फ्लेश लाइट जलाई, तो क्रुद्ध हिम-मानव उनकी ओर दौड़ा। शेरपा समेत वे बड़ी कठिनाई से अपनी जान बचाकर, वापिस लौटने में सफल हुए।

सन् १९५८ में इटली के प्रख्यात पत्रकार गाडविन हिम-मानव की खोज में अपने दल समेत हिमाच्छादित चोटियों पर घूमे। एक जगह उनकी मुठभेड़ ही हो गई। राइफल की घोड़ा दबाने की अपेक्षा

उन्होंने कैमरे का बटन दबाना अधिक उचित समझा। कुछ ही मिनट सामने रहकर, वह विशालकाय प्राणी भाग खड़ा हुआ। उसे पकड़ा या मारा तो न जा सका, पर फोटो बहुत साफ आए। उसके पैरों के निशानों के भी फोटो उन्होंने लिए और अपने देश जाकर, उन चित्रों को छापते हुए हिम-मानव के अस्तित्व की पुष्टि की।

तिब्बत और चीन की सीमा पर किसी प्रयोजन के लिए गए एक चीनी कप्तान ने भी हिम-मानव से सामना होने का विवरण अपने फौजी कार्यालय में नोट कराया था।

स्विट्जरलैंड का एक पर्वतारोही दल एवरेस्ट पर चढ़ाई करने के लिए आया था। उनके साथ पंद्रह पहाड़ी कुली थे। दल का एक कुली थोड़ा पीछे रह गया। उस पर हिम-मानव ने आक्रमण कर दिया। चीख-पुकार सुनकर, अन्य कुली उसे बचाने दौड़े और घायल स्थिति में उसे बचाया।

सन् १८८७ में कर्नल वेडैल के नेतृत्व में एक ब्रिटिश पर्वतारोही दल भारत आया था। उसने सिक्किम क्षेत्र में यात्रा की थी। १६ हजार फुट ऊँचाई पर उन्होंने बर्फीली चोटियों पर पाए गए हिम-मानव के ताजे पद-चिह्नों के फोटो उतारे थे।

वनस्पति विज्ञान के प्रो० हेनरी ल्यूस जिन दिनों वनस्पति शोध के संदर्भ में हिमाच्छादित प्रदेशों में भ्रमण कर रहे थे, तब उन्होंने मनुष्याकृति के विशालकाय प्राणी को आँखों से देखा था। वह तेजी से एक ओर से आया और दूसरी ओर के पहाड़ी गड्ढों में कहीं गायब हो गया। ठीक इसी से मिलती-जुलती कहानी सन् १९२१ में एवरेस्ट चढ़ाई पर निकले कर्नल हावर्ड ब्यूरी की है। उनके सामने से भी वैसा ही वन-मानुष से मिलता-जुलता प्राणी निकला था। उस क्षेत्र में आने-जाने वाले बताते थे कि वह अकेले-दुकेले आदमियों और जानवरों को मारकर खा जाता है।

भारतीय हिम-यात्री ए० एन० तोम्वाजी ने सिक्किम क्षेत्र में हिम-मानव देखने का विवरण बताया था। स्विट्जरलैंड के डायरन

फर्थ ने भी सन् १९२५ में उसे आँखों से देखा था। नार्वे के दो वैज्ञानिक थोरवर्ग और फ्रसिस्ट किसी अनुसंधान के संबंध में सिक्किम क्षेत्र में गये थे। उस पर हिम-मानव ने हमला कर दिया और कंधे नोंच डाले। गोलियों से उसका मुकाबला करने पर ही वे लोग बच सके। गोली उसे लगी तो नहीं किंतु वह डरकर भाग तो गया ही। सन् १९५१ में एक ब्रिटिश यात्री एरिक शिपटन ने भी हिम-मानव के पैरों के निशानों के बर्फीले क्षेत्र से फोटो खींचे थे। ऐसे ही फोटो प्राप्त करने वालों में डॉ० एडमंड हिलेरी का भी नाम है। सन् १९५४ में कंचन जंघा चोटियों पर सर जानहंट के दल ने २० हजार फुट की ऊँचाई पर हिम-मानव के पद चिह्नों के प्रमाण एकत्रित किए थे। वे निशान प्रायः १८ इंच लंबे थे। न्यूजीलैंड के पर्वतारोही जार्जलोंव ने उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर हिम-मानव के अस्तित्व को असंदिग्ध बताया था।

सन् १९५५ में इंग्लैंड के दैनिक पत्र 'डेलीमेल' ने अपना एक खोजी दल मात्र हिम-मानव संबंधी अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए भेजा था। दल ने बहुत समय तक हिमाच्छादित प्रदेशों के दौरे किये। इस बीच उन्होंने हिम-मानव देखा या पकड़ा तो नहीं, पर ऐसे अनेक प्रमाण, अवशेष एवं चित्र संग्रह करके, उस पत्र में छपाए, जिनसे हिम-मानव संबंधी जनश्रुतियाँ सारगर्भित होती हैं।

असह्य माने जाने वाले शीत और ताप से प्राणियों का विशेषतया मनुष्य जैसे कोमल प्रकृति जीवधारी का निर्वाह होते रहने के उपरोक्त प्रमाण यह सिद्ध करते हैं कि प्रतिकूलताएँ कितनी ही बड़ी क्यों न हों जीव उन सबसे लड़ सकने में समर्थ है। उसका संकल्प बल ऐसी परिस्थितियाँ पैदा कर सकता है, जिसमें असह्य को सह्य और असंभव को संभव बनाया जा सके। न केवल प्रकृति से जूझने में वरन् पग-पग पर आती रहने वाली कठिनाइयों को निरस्त करने में भी संकल्प बल की प्रखरता का तथ्य सदा ही सामने आता रहता है।

□ □

अद्भुत चमत्कारी संकल्प-शक्ति

विंडसर स्टेट (अमेरिका) की विधान सभा के सम्मानित सम्माननीय सदस्य क्लेरेन्स एडम, राजकीय पुस्तकालय के निदेशक भी थे। यह पद उन्होंने बड़े यत्न से प्राप्त किया था, सो भी केवल स्वाध्याय का शौक पूरा करने के लिए। एडम की दिनचर्या में सर्वाधिक घंटे पढ़ाई के थे। दुर्भाग्य कहें या सौभाग्य एक दिन क्लेरेन्स एडम के हाथ आगस्टाइन एडम की पुस्तक मैस्मरेजम पर पच्चीस रहस्यमय पाठ (ट्वेन्टीफाइव सीक्रेट लेसंस इन मैस्मरेजिम) और डॉक्टर बर्नहम की हिप्नोटिज्म का इतिहास (हिस्ट्री आफ हिप्नोटिज्म) हाथ लग गईं। पुस्तकें अभी तक पूरी नहीं पढ़ी जा सकी थीं कि एडम के मन में इस विद्या के प्रयोग की तीव्र इच्छा उठ खड़ी हुई। एडम मानवीय चेतना की अद्भुत शक्तियों के प्रमाण थे। यद्यपि उन्होंने अपराधी जीवन प्रारंभ कर दिया, किंतु इस बात के प्रमाणीकरण में कोई त्रुटि नहीं आई कि मनुष्य की प्राण-चेतना सचमुच ही एक आश्चर्यजनक शक्ति है। प्राणशक्ति के प्रयोग से व्यक्ति अद्भुत कार्य कर सकता है। सिद्धियाँ प्राणशक्ति के ही निमंत्रण का अद्भुत परिणाम होती हैं।

एडम ने पहला प्रयोग वाटरमैन फ्लावरा मिल में किया। एक दिन घनी रात के अंधकार में एडम उस मील के फाटक में जा घुसे। न तो सेध काटी और न ही संतरी को जबरन क्लोरोफार्म सुँघाया। जड़-चेतन किसी को भी प्रभावित कर मनमर्जी के अनुसार काम ले लेना तो अब मात्र उनकी दृष्टि का काम था; हिप्नोटिज्म और मैस्मरेज्म का उन्होंने कुछ इस तरह अभ्यास किया। फ्लावरा मील खजाने का चौकीदार हाथ में रायफल लिए खड़ा था। एडम ने कोई मारपीट नहीं की। भरपूर दृष्टि डाली चौकीदार के चेहरे पर। नजरें चार हुईं, न जाने कौन-सा मंत्र फूँका एडम ने, चौकीदार जहाँ था, वहीं खड़े का खड़ा रह गया। मानो उस खड़े-खड़े सोने की बीमारी हो गई हो। एडम अब तिजोरी के पास पहुँचा। ताला खोला बिना किसी चाभी

के जड़ पदार्थ भी अब उनकी दृष्टि प्रखरता के दास बन गए थे। तिजोरी से १५ हजार डालर निकाले। ताला उसी तरह बंद कर दिया और बड़े मजे से वहाँ से चले आए मानो डालर चुराए नहीं हों वरन् अपनी ही संपत्ति लेकर निकले हों। चौकीदार अभी तक यंत्रवत् खड़ा था। एडम के जाने के बाद उसे पता चला कि कोई आया था और तिजोरी की चोरी हो गई। प्रातःकाल पुलिस के सामने उसने बयान दिया—"एक आदमी आया, उसने मेरी ओर देखा तो मैं संज्ञाहीन-सा खड़ा रह गया; उसने सारा काम किया, पर मुझे पता नहीं वह कौन था, क्योंकि न तो मैं बोल सका और न ही हिल-डुल सका। चोरी उसने मेरे देखते की, पर मुझे ऐसा लगता था कि मेरे ऊपर हल्का-सा धुएँ का पर्दा पड़ा हुआ है और मैं उसमें बंदी हूँ, कुछ कर नहीं सकता था, जब तक वह व्यक्ति यहाँ रहा।"

इस घटना के कुछ ही दिन बाद विंडसर के एक जौहरी की दुकान में एक आदमी आया; उसने अपनी विलक्षण दृष्टि से जौहरी को देखा। जौहरी इस तरह निस्तब्ध रह गया, मानो वह काष्ठ विनिर्मित हो, उस आगंतुक ने अच्छे-अच्छे जवाहरात, जौहरी और बाजार की भारी भीड़ के बीच अपनी जेब में भरे और वहाँ से चला गया। देखा सबने पर किसी ने न पहचाना, न प्रतिरोध किया, कौन आया, कहाँ गया यह भी किसी को पता नहीं था। पीछे जौहरी से पुलिस ने बयान लिए तो उसने भी वही शब्द दोहराए, जो पहले चौकीदार ने कहे।

एक दिन समुद्र की हवा खाने के लिए बिंडसर के एक करोड़पति अपनी पत्नी के साथ कार पर आ रहे थे। उनकी भेंट अनायास ही इस जादूगर से हो गई। उसने उनके सारे जेवर और घड़ियाँ उतरवा लीं और उन्होंने ऐसे दे दिया, मानो उपहार दे रहे हों। पीछे जो बयान दिए उन्होंने, वह पहले वाले पीड़ितों के बयानों से अक्षरशः मिलते-जुलते थे।

इन खबरों ने एक बार तो बिंडसर राज्य में तहलका मचा दिया। कुबेरों की नींद हराम हो गई। एक मिल मालिक ने तो अपने

बँगले के सभी निकासों पर स्वचालित बंदूकें लगवा दीं। इन्हीं बंदूकों के बल पर क्लेरेन्स एडम पकड़े जा सके। एक रात वे इस बँगले के एक दरवाजे पर पहुँचे और अंदर प्रवेश का प्रयत्न करने लगे तो बंदूक ने उन्हें घायल कर दिया। धड़ाके की आवाज सुनकर लोग दौड़े-दौड़े आए। एडम को पहचानकर लोग आश्चर्यचकित रह गए। अदालत में एडम ने अपने ऊपर लगाए गए वह सारे अभियोग स्वीकार कर लिए और यह भी मान लिया कि यह सब उन्होंने सम्मोहन विद्या (हिप्नोटिज्म) के द्वारा किया है।

इन अपराधों के लिए इन्हें दस वर्ष सश्रम कारावास का दंड दिया गया और वे शहर की अपेक्षा बिंडसर की पहाड़ी जेल में भेज दिए गए। जेलर उनकी भद्र वेश-भूषा और सांस्कृतिक रहन-सहन से बहुत अधिक प्रभावित हुआ, सो वह एडम के लिए अनायास ही उदार बन गया। इस उदारता का लाभ एक बार फिर एडम को मिला। उसने जेलर की सहायता से अपने लिए कुछ पुस्तकें पढ़ने के लिए प्राप्त कर लीं। इन्हीं पुस्तकों में उसकी वह दोनों मनचाही पुस्तकें भी थीं। दरअसल अन्य पुस्तकें तो साथ में एडम ने केवल इसलिए मँगाई थीं कि किसी को उस पर शक न हो जाए। यह पुस्तकें उसने अपनी विद्या को आगे बढ़ाने के लिए मँगाई थीं, सो एक बार फिर से जेल में ही उसकी साधना-अनुष्ठान चल पड़ा और दूसरे लोगों को इस बात की कानों-कान खबर न हुई।

एक दिन दैवयोग से जब एडम अपने कमरे की चीजों पर हिप्नोटिज्म का अभ्यास कर रहे थे, तब उन्हें जेल के एक अन्य डॉक्टर क़ैदी ने देख लिया, उसका भी हिप्नोटिज्म सीखने का मन था। धीरे-धीरे दोनों में बातचीत होने लगी और यही बातचीत एक दिन प्रगाढ़ मैत्री में बदल गई।

किंतु इन्हीं दिनों एडम बीमार पड़ गए। उनका इलाज हुआ, पर वे अच्छे हुए ही नहीं। एक दिन अपने डॉक्टर मित्र के कमरे में प्राण त्याग दिए। जेल के डॉक्टर ब्राउस्टर उनकी अंत्य परीक्षा की और उन्हें मृत घोषित कर मृत्यु का प्रमाण-पत्र भी दे दिया। एडम के भतीजे विलियम डान को वह शव भी सौंप दिया गया। शव ले

जाकर विलियम डान ने विंडसर के कब्रगाह के संरक्षक को सौंप दिया ताकि अगले दिन उसे एक सुरक्षित कब्र में दफनाया जा सके। एडम का शव एक संदूक में कफन लपेटकर रख दिया गया।

जाड़े के दिन थे, उस दिन तो और भी भयंकर शीत थी। हिमपात हो रहा था, ऐसे समय तीन-चार व्यक्ति उस कब्रिस्तान में प्रविष्ट हुए और जिस पेटी में एडम का शव था उसके पास गए। संदूक खोलकर, उनका शव निकाला और उनके स्थान पर उन्होंने अपने साथ लाए शव को लिटा दिया। ताला जैसे का तैसा बंद कर, वह लोग बाहर आ गए और घनघोर अंधकार में न जाने कहाँ खो गए ? इस बार कब्रिस्तान के संरक्षक के साथ भी वही सम्मोहन हुआ। वह सब कुछ देखते हुए भी कुछ कर न सका, पर उसने जो रिपोर्ट दी—उससे यह पता चल गया कि लाश बदली गयी और जिसने यह सारा काम किया, उसका हुलिया डॉ० मार्टिन जैसा था। दूसरे दिन एलियास से खबर मिली कि वहाँ से एक शव की चोरी हो गई है। लोगों ने जाकर बदले हुए शव को खुलवाकर देखा, पर उसका चेहरा कुछ इस तरह विकृत था कि पहचान में ही नहीं आया, जबकि एडम के शव में किसी प्रकार के दाग-धब्बे नहीं थे तो भी यह रहस्य, रहस्य ही बना रह गया।

कुछ दिन बीते। बिंडसर का एक नागरिक कनाडा आया। वहाँ एक होटल में खाना खाने पहुँचा तो यह देखकर अवाक् रह गया कि वहाँ एडम और डॉ० मार्टिन दोनों साथ-साथ बैठे भोजन कर रहे हैं। वह बहुत घबराया, जब तक सँभलकर पुलिस को सूचना दे, तब तक वह दोनों व्यक्ति वहाँ से जा चुके थे। घटना अखबारों में छपी तो एक बार फिर से बिंडसर के धन कुबेर काँप गए। इसी बीच कई स्थानों पर उसके देखे जाने की खबरें मिलीं। सभी खबरें विश्वस्त व्यक्तियों द्वारा दी गई थीं। फलस्वरूप एक बार फिर से पुलिस और सी० आई० डी० विभाग सतर्क किया गया। पर एडम पकड़ा नहीं जा सका। कहते हैं, उसने ओझल और अंतर्धान होने की विद्या जान ली थी। यही नहीं उसने अपने शरीर की हर अनैच्छिक क्रिया पर नियंत्रण प्राप्त कर

लिया था। एक क्षण में मर जाना और दूसरे ही क्षण जीकर काम में लग जाना उसके लिए बाँये हाथ का खेल था।

आखिरी भेंट एक सी० आई० डी० आफीसर से अमेरिका के ही टोरंटो नगर में हुई। एडम ने अधिकारी से काफी देर तक बातचीत की। जैसे ही पुलिस के सिपाही गिरफ्तार करने के लिए मौका पाकर आगे बढ़े और उसे चारों ओर से घेरे में लिया, एडम एकाएक अंतर्धान हो गया। सी० आई० डी० अधिकारी तथा सिपाही एक-दूसरे का मुँह ताकते खड़े रह गए। इसके बाद ऐडवर्ड स्मिथ ने उसका विस्तृत परिचय छापा और स्वीकार किया कि उसके पास कोई अद्‍भुत योग शक्ति थी, जो किसी भी मौतिक शक्ति से कहीं अधिक समर्थ थी; किंतु उसके बाद से आज तक एडम के बारे में कुछ भी पता नहीं चल पाया कि वह कहाँ गया है, है भी या नहीं और है तो लोगों को दीखता क्यों नहीं ?

यह घटना भारतीय योगियों की सी सिद्धि और प्राण नियंत्रण की जैसी घटना है। उससे जीवनी शक्ति की विलक्षणता, विलगता और समर्थता का ही प्रतिपादन होता है। पश्चिमी देशों में योग सिद्धि और प्राण नियंत्रण के भारतीय विज्ञान की अनुकृति ही सम्मोहन तथा मानवीय विद्युत् के प्रयोगों के रूप में अपनायी गई। इस विद्या के मूल में मनुष्य की संकल्प शक्ति की प्रगाढ़ता ही काम करती है और वही बल अपने परिमाण के अनुसार पात्र को प्रभावित करता व इच्छानुयायी बनाता है।

● मानवी विद्युत् का उपयोग

इस विद्या का वशीकरण, मूर्छा प्रयोग, दैवी आवेश आदि के रूप में प्रचलन तो पहले भी था, पर उसे व्यवस्थित रूप अठारहवीं शताब्दी के आरंभ में आस्ट्रिया निवासी डॉक्टर फ्रांज मेस्मर ने दिया। उन्होंने मानवी विद्युत् का अस्तित्व, स्वरूप और उपयोग सिद्ध करने में घोर परिश्रम किया और उसके आधार पर कठिन रोगों के उपचार में बहुत ख्याति कमाई। वे अपने शरीर की बिजली का रोगियों पर आघात

करते, साथ ही लौह चुंबक भी आवश्यकतानुसार प्रयोग में लाते। इस दुहरे प्रयोग से न केवल शारीरिक वरन् मानसिक रोगों के उपचार में उन्होंने आशातीत सफलता प्राप्त की।

मेस्मर के शिष्य प्युइसेग्यूर ने प्रयोग को अधिक तत्परतापूर्वक आगे बढ़ाया और उन्होंने चुंबकीय शक्ति द्वारा तंद्रा उत्पन्न करने में नई सफलताएँ पाईं। यह तंद्रा मानसिक तनाव को विश्राम द्वारा शांत करने और अवचेतन के रहस्मय परतों को खोलने में बहुत कारगर सिद्ध हुई। इस प्रकार चिकित्सक की सहायता के बिना भी कोई व्यक्ति स्वनिर्देशन विधि का उपयोग करके अपनी शारीरिक एवं मानसिक चिकित्सा आप कर सकता है।

सम्मोहन प्रयोग से गहरी निद्रा लाकर, गहरे आपरेशन में समग्र सफलता सबसे पहले डॉ० ऐसडेल को मिली। उन्होंने लगभग ३०० ऐसे आपरेशन किए। उनके दावे विवादास्पद माने गए। अस्तु सरकारी जाँच कमीशन बिठाया गया। कमीशन ने अपनी उपस्थिति में ऐसे आपरेशन कराए और एसडेल के प्रयोगों को यथार्थ घोषित किया। यह प्रक्रिया संसार भर में फैली। फ्रांस के डॉ० सार्क को इस विधि से हिस्टीरिया को अच्छा करने में कारगर सफलता मिली। मनोविश्लेषण विज्ञान को मूर्त रूप देने वाले डॉ० फ्रायड ने अपने प्रतिपादनों में डॉ० सार्क के प्रयोगों से विशेष प्रेरणा ली थी।

इंगलैंड की रायल मेडीकल सोसायटी के अध्यक्ष तथा लंदन विश्वविद्यालय में चिकित्सा विज्ञान के प्राध्यापक डॉ० जान एलियट सन ने सम्मोहन विज्ञान में सन्निहित तथ्यों को बहुत उपयोगी पाया और वे इस प्रयत्न में जुट पड़े कि रोगी को पीड़ा की अनुभूति से बचाकर आपरेशन करने में इस विद्या का उपयोग किया जा सकता है। उन दिनों बेहोश करने की दवाओं का आविष्कार नहीं हुआ था। आपरेशन के समय रोगी कष्ट पाते थे। इस कठिनाई को हल करने

में सम्मोहन-विज्ञान बड़ी सहायता कर सकता है। इसी दृष्टि से उसका अनुसंधान एवं प्रयोग कार्य चलता रहा। इसमें उन्हें आंशिक सफलता भी मिली।

इसी शोध संदर्भ में इंग्लैंड के एक-दूसरे डॉक्टर जेम्स ब्रेड ने यह सिद्ध किया कि दूसरे के प्रयोग से ही नहीं वरन् आत्म निर्देशों से एवं ध्यान की एकाग्रता से भी सम्मोहन निद्रा की स्थिति बुला लेना संभव है। दूसरों के दिये सुझाव को बिना किसी तर्क-वितर्क से स्वीकार कर लेना एक अद्‌भुत बात है। इसमें तर्क शक्ति लगभग प्रसुप्त स्थिति में चली जाती है और आदेश, अनुशासन पालन करने वाली श्रद्धा का आधिपत्य मस्तिष्क पर छाया रहता है। इस स्थिति से लाभ उठाकर, उपचारकर्ता मन में उगी हुई अवांछनीय परतों को उखाड़कर, उस जगह नई स्थापनाएँ करता है। यह शारीरिक सर्जरी जैसी क्रिया है। सड़े अंग काटकर फेंक देना और उस स्थान पर नई चमड़ी, नया मांस जोड़ देना सर्जरी के अंतर्गत सरल है। इसी प्रकार सम्मोहन विद्या—हिप्नोटिज्म के प्रयोगों से मन की विकृतियों के झाड़-झंखाड़ उखाड़ना और उनके स्थान पर नई पौध जमाना संभव होता है। उपचारकर्ता यही करते हैं। यों इन प्रयोगों का एक हानिकारक पक्ष भी है, जिसे भूतकाल में तांत्रिक लोग किन्हीं को क्षति पहुँचाने के लिए मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि रूपों में करते रहे हैं।

इसके भले-बुरे परिणामों में शक्ति का दोष नहीं है। दोष है उनके प्रयोक्ताओं का। आग का उपयोग भोजन पकाने, जाड़ा भगाने, सर्दी से बचने के लिए भी किया जा सकता है और घर जलाने में भी हो सकता है। इसमें आग का क्या दोष ? दोष तो आग का उपयोग करने वाले का है। उचित यही है कि इस शक्ति का सदुपयोग किया जाए। दुरुपयोग के साथ अपनी स्वयं की हानि होने की भी संभावना सदैव बनी रहती है।

● अद्‌भुत और चमत्कारी शक्ति

संकल्प शक्ति के इस स्वरूप को अद्‌भुत और चमत्कारी कहा जा सकता है। इसकी पृष्ठभूमि प्रत्येक मस्तिष्क में विद्यमान रहती है। कई बार अनायास और आकस्मिक ही जागृत हो उठती है। इस चमत्कारी क्षमता से संपन्न होने के रूप में विख्यात रूसी महिला नेल्या मिखायलोव में सहसा असामान्य इच्छा शक्ति उस समय विकसित हो गई, जब वह युद्ध के दिनों में सैनिक के रूप में मोर्चे पर लड़ते हुए शत्रु के गोले से गंभीर रूप से आहत होकर, अस्पताल में आरोग्य लाभ कर रही थी।

मास्को विश्वविद्यालय के जीव विज्ञान शास्त्री एडवर्ड नोमोव ने नेल्या का परीक्षण विश्लेषण किया। प्रयोगशाला में उसने मेज पर बिखरी माचिस की तीलियों को बिना छुए, तनिक ऊपर से हाथ घुमाकर जमीन पर गिरा दिया। फिर वही तीलियाँ काँच के डिब्बे में बंद कर दी गईं। नेल्या ने बंद डिब्बे के ऊपर हाथ घुमाया, तो तीलियों में हलचल मच गई।

इसी तरह सोवियत लेखक बदिममारीन के साथ भोजन करते समय नेल्या ने मेज पर थोड़ी दूर पड़े रोटी के टुकड़े पर अपना ध्यान एकाग्र किया, तो वह टुकड़ा खिंचकर नेल्या के पास आ गया। फिर उसने झुककर मुँह खोला, तो वह टुकड़ा मुँह में उछलकर समा गया। नेल्या का परीक्षण भली-भाँति रूसी वैज्ञानिकों ने किया और पाया कि उसके मस्तिष्क में विद्युत्-शक्ति-सी कौंधती है और देह से चुंबकीय शक्ति निकलती है।

बिजली के भले-बुरे परिणाम सभी को विदित हैं। तांत्रिक वर्ग के लोगों में से कितने ही उसका दुष्प्रयोजनों में व्यय करते और अपने प्रतिपक्षियों को हानि पहुँचाते भी देखे गए हैं।

युगांडा के एक भूमिगत संगठन 'दिनी बा मसांबूबा' के कार्यों की जानकारी के लिए नियुक्त एक ब्रिटिश गुप्तचर अधिकारी ने अपनी संस्मरण पुस्तक में विभिन्न घटनाओं का उल्लेख किया है। ये

ब्रिटिश अफसर जान क्राफ्ट प्रगतिशील अंधविश्वासों से सर्वथा मुक्त, कुशाग्र बुद्धि, साहसी व प्रशांत मस्तिष्क से काम करने वाले थे। उन्हें जादू-टोने पर तनिक भी विश्वास नहीं था, पर जब वे गुप्त संगठन का पता लगाने में सक्रिय हुए, तो उन्हें चेतावनी दी गयी कि वे इस कार्य से हाथ खींच लें। जब वे न माने, तो उनके ऊपर सर्वथा अप्रत्याशित व अस्वाभाविक तौर पर महा विषैले सर्पों से आक्रमणों की योजना बनाई गई। वे एक भोज में गए, वहाँ से लौटते समय, आगे अनेक अतिथि तो निरापद चले गए, पर जब जानक्राफ्ट सीढ़ियों पर उतरने लगे तो वहाँ भयंकर विषधर घात लगाए बैठा था। मेजबान ने जानक्राफ्ट को एकदम से धक्का देते हुए, न ठेल दिया होता तो उन्हें डंसने ही वाला था।

एकबार वे अकस्मात् एक सहयोगी के यहाँ पहुँचे, तो वहाँ भी एक भयंकर फणिधर ने तीखी विषधार उनकी आँखों की ओर छोड़ी। सहकर्मी सतर्क व चुस्त था, उसने उन्हें तत्काल नीचे गिरा दिया और जहरीली घात ऊपर निकल गई अन्यथा उनका प्राणांत हो जाता या फिर वे जन्मभर के लिए अंधे हो जाते।

फिर एक बार मोटर के दरवाजे के पास, दूसरी बार बिस्तर पर ही भयंकर विषैले सर्प दीखे। एकबार क्राफ्ट के दफ्तर के अंधेरे कौने में दुबका बैठा था। घटनाओं का विश्लेषण स्पष्ट बताता था कि यह संयोग मात्र नहीं हो सकता। उनके अकस्मात् दूर कहीं पहुँचने की सूचना उनके शत्रुओं को भी नहीं मिल सकती थी, अतः संभावना भी नहीं मानी जा सकती थी कि वे लोग चुपके से ये सर्प छोड़े जाते रहे होंगे। फिर भोज में आये अनेक नागरिकों में से सिर्फ क्राफ्ट पर ही प्रहार की चेष्टा सर्प ने क्यों की ? घटनाएँ इस तथ्य को मानने को विवश करती हैं कि वहाँ प्रचलित यह मान्यता सही हो सकती है कि वहाँ के तांत्रिक सर्पों को वश में कर उनका इस तरह मन चाहा प्रयोग करते हैं।

इस स्तर की सिद्धियाँ कठिन योगाभ्यासों और दीर्घकाल तक की ज़ाने वाली साधनाओं के परिणामस्वरूप ही प्राप्त होती हैं। किसी को पूर्व जन्म के संचित पुण्यों से अथवा ईश्वरीय कृपा के परिणामस्वरूप ये चमत्कारीय उपलब्धियाँ प्राप्त हो जाएँ, यह बात और है। सामान्य व्यक्ति अपने जीवन में इस संकल्प शक्ति का थोड़ा भी उपयोग कर सके तो बहुत-सी चिंताओं और परेशानियों से बच सकता है।

● संकल्प शक्ति के उपयोगी लाभ

सामान्य जीवन में आने वाली छुटपुट असफलताओं का दोष दुर्भाग्य, दैव और दूसरों को देते रहने वाले जीवन भर असफलताओं को ही आमंत्रित करते रहते हैं क्योंकि सफलता प्राप्ति के लिए उनमें न अभीष्ट मनोबल होता है और न ही संकटों से जूझने का साहस जबकि कितने ही व्यक्तियों ने सामान्य से भी गिरी नितांत दुर्दशाग्रस्त स्थिति में रहते हुए भी असाधारण सफलताएँ प्राप्त कर दिखाई हैं।

कितने ही व्रतशील उच्च उद्देश्यों को लेकर कार्य क्षेत्र में उतरे और तुच्छ सामर्थ्य के रहते हुए भी महान् कार्य कर सकने में सफल हुए हैं। उन्हें निरंतर आगे बढ़ने और अवरोधों को गिराने की सामर्थ्य आंतरिक मनोबल से ही मिली है। बिहार के हजारी बाग जिले के हजारी नामक किसान ने इस प्रदेश के गाँव में आम के बगीचे लगाने का निश्चय किया था। यदि दृढ़ संकल्प प्रबल आकांक्षा बनकर, उभरे तो फिर मस्तिष्क को उसका सरंजाम खड़ा करने और शरीर को उसे व्यवहार में परिणत करते देर नहीं लगती। यही सदा-सर्वदा से होता रहा है, यही हजारी किसान ने भी कर दिखाया। उसने उस सारे इलाके में आम के दरख्त लगाए और अंततः उन आम्र उद्यानों की संख्या एक हजार तक जा पहुँची। वही इलाका इन दिनों बिहार का हजारी बाग जिला कहलाता है। सत्संकल्पों की परिणति सदा इसी प्रकार से व्यक्ति और समाज के लिए महान् उपलब्धियाँ प्रस्तुत करती रही है।

नर हो या नारी, बालक हो या वृद्ध, स्वस्थ हो या रुग्ण, धनी हो या निर्धन परिस्थितियों से कुछ बनता-बिगड़ता नहीं, प्रश्न संकल्प शक्ति का है। मनस्वी व्यक्ति अपने लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ बनाते और सफल होते हैं। समय कितना लगा और श्रम कितना पड़ा उसमें अंतर हो सकता है, पर आत्म-निर्माण के लिए प्रयत्नशील अपनी आकांक्षा में शिथिलता एवं प्रखरता के अनुरूप देर-सबेर में सफल होकर ही रहता है। नारी की परिस्थितियाँ नर की अपेक्षा कई दृष्टियों से न्यून मानी जाती हैं किंतु यह मान्यता वहीं तक सही है, जहाँ तक कि उसका मनोबल गया-गुजरा बना रहे। यदि वे अपनी साहसिकता को जगा लें, संकल्प शक्ति का सदुद्देश्य के लिए उपयोग करने लगें तो कोई कारण नहीं कि अपने गौरव-गरिमा का प्रभाव देने में किसी से पीछे रहें।

मैत्रेयी याज्ञवल्क्य के साथ पत्नी नहीं, धर्मपत्नी बनकर रहीं। राम कृष्ण परमहंस की सहचरी शारदामणि का उदाहरण भी ऐसा ही है। सुकन्या ने च्यवन के साथ रहना किसी विलास-वासना के लिए नहीं उनके महान् लक्ष्य को पूरा करने में साथी बनने के लिए किया था। जापान के गांधी कागावा की पत्नी भी दीन-दु:खियों की सेवा का उद्देश्य लेकर के ही उनके साथ दांपत्य सूत्र में बँधी थी। नर-पामरों को जहाँ दांपत्य जीवन में विलासिता के, पशु-प्रयोजन के अतिरिक्त और कोई उद्देश्य दृष्टिगोचर ही नहीं होता; वहाँ ऐसी आदर्शवादी नर-नारियों की भी कमी नहीं जो विवाह-बंधन की आवश्यकता तभी अनुभव करते हैं, जब उससे वैयक्तिक और सामाजिक प्रगति का कोई उच्च स्तरीय उद्देश्य पूरा होता हो।

कुंती भी सामान्य रानियों की तरह एक महिला थी। जन्म जात रूप से तो सभी एक जैसे उत्पन्न होते हैं। प्रगति तो मनुष्य अपने पराक्रम-पुरुषार्थ के बल पर करता है। कुंती ने देवत्व जगाया—आकाशवासी देवताओं को अपना सहचर बनाया और पाँच देव-पुत्रों को जन्म दे सकने में सफल बन सकी। सुकन्या ने अश्विनी

कुमारों को और सावित्री ने यम को सहायता करने के लिए विवश कर दिया था। उच्चस्तरीय निष्ठा का परिचय देने वाले देवताओं की, ईश्वरीय सत्ता की सहायता प्राप्त कर सकने में भी सफल होते हैं। टिटहरी के धर्म युद्ध में महर्षि अगस्त्य सहायक बनकर सामने आए थे। तपस्विनी पार्वती अपने व्रत-संकल्प के सहारे शिव की अर्धांगिनी बन सकने का गौरव प्राप्त कर सकी थी। पति को आदर्श पालन के लिए प्रेरित करने वाली लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला स्वयं भी वनवास जैसी साधना घर पर करती रही। इन महान् गाथाओं में आदर्शवादी संकल्प ही अपनी गरिमा प्रकट करते दीखते हैं।

बंगाल के निर्धन विद्वान् प्रतापचंद्र राय ने अपनी सारी शक्ति और संपत्ति को बाजी पर लगाकर, महाभारत के अनुवाद का कार्य हाथ में लिया। वे उसे अपने जीवन में पूरा न कर सके तो उनकी पत्नी ने अपना संस्कृत ज्ञान पूरा करके, उस अधूरे काम को पूर्ण करके दिखा दिया। ऐसी साहसिकता वहाँ ही दिखायी पड़ती है, जहाँ उच्चस्तरीय आदर्शों का समावेश हो।

विद्वान् कैयट व्याकरण शास्त्र की संरचना में लगे हुए थे। उनकी पत्नी भारती मूंज की रस्सी बटकर गुजारे का प्रबंध करती थी। साम्यवाद के प्रवर्तक कार्ल्स मार्क्स भी कुछ कमा नहीं पाते थे। यह कार्य उनकी पत्नी जैनी करती थी। वे पुराने कपड़े खरीदकर उनमें से बच्चों के छोटे कपड़े बनाती और फेरी लगाकर बेचती थीं। आदर्शों के लिए पतियों को इस प्रकार प्रोत्साहित करने और सहयोग देने में उनका उच्चस्तरीय संकल्प बल ही कार्य करता था।

जहाँ सामान्य नारियाँ अपने बच्चों को मात्र सुखी-संपन्न देखने भर की कामना सँजोए रहती हैं, वहाँ ऐसी महान् महिलाएँ भी हुई हैं, जिन्होंने अपनी संतान को बड़ा आदमी नहीं, महामानव बनाने का सपना देखा और उसे पूरा करने के लिए अपनी दृष्टि और चेष्टा में आमूल-चूल परिवर्तन कर डाला। ऐसी महान् महिलाओं में विनोबा की माता आती हैं, जिन्होंने अपने तीन बालकों को ब्रह्मज्ञानी

बनाया। शिवाजी की माता जीजाबाई को भी यही गौरव प्राप्त हुआ। मदालसा ने अपने सभी बालकों को बाल ब्रह्मचारी बनाया था। शकुंतला अपने बेटे भरत को, सीता अपने लवकुश को सामान्य नर-वानरों से भिन्न प्रकार का बनाना चाहती थी। उन्हें जो सफलताएँ मिलीं वे अन्यान्यों को भी मिल सकती हैं। शर्त एक ही है कि आदर्शों के अंतःकरण में गहन श्रद्धा की स्थापना हो सके और उसे पूरा करने के लिए अभीष्ट साहस संजोया जा सके। संकल्प इसी को कहते हैं।

पुरुष महिलाओं की आत्मिक प्रगति में सहायक बनें, महिलाएँ पुरुषों, छोटे बच्चों को संस्कारवान् बनाने का व्रत लें, तो इस पारस्परिक सहयोग से राष्ट्र जागरण, आध्यात्मिक चेतना का विकास तथा आदर्शवादी आस्थाओं की स्थापना जैसे महान् कार्य सहज ही किए जा सकते हैं।

वंश परंपरा या पारिवारिक परिस्थितियों की हीनता किसी की प्रगति में चिरस्थायी अवरोध उत्पन्न नहीं कर सकी है। इसी प्रकार की अड़चनें अधिक संघर्ष करने के लिए चुनौती देने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकतीं। सत्यकाम जाबाल वेश्या पुत्र थे। उनकी माता यह नहीं बता सकी थी कि उस बालक का पिता कौन था ? ऐतरेय ब्राह्मण के रचयिता ऋषि ऐतरेय—इतरा नामक रखैल के पुत्र थे। महर्षि वशिष्ठ, मातंगी आदि के बारे में भी ऐसा ही कहा जाता है। रैदास, कबीर, बाल्मीकि आदि का जन्म छोटे कहे जाने वाले परिवारों में ही हुआ था। पर इससे उन्हें महानता के उच्च पद तक पहुँचने में कोई स्थायी अवरोध उत्पन्न नहीं हुआ। मनुष्य की संकल्प शक्ति इतनी बड़ी है कि वह अग्रगमन के मार्ग में उत्पन्न होने वाली प्रत्येक बाधा को पैरों तले रौंदती हुई आगे बढ़ सकती है।

❑ ❑

पहले मन को संस्कारित कीजिए

मन की दो सर्वज्ञात विशेषताएँ हैं—चंचलता एवं सुख-लिप्सा। बंदर जैसी उछल-कूद, आवारा छोकरों जैसी मटरगस्ती, चिड़ियों की तरह यहाँ-वहाँ फुदकते फिरना, उसकी चपलवृत्ति को संतुष्टि पहुँचाते हैं। कल्पना के महलों की सृष्टि, कल्पना लोकों का तीव्र भ्रमण-विचारणा, उसकी शक्ति का बड़ा अंश तो इन्हीं भटकनों, जंजालों में नष्ट हो जाते हैं। शक्ति का यह व्यर्थ छीजन रोककर, उसे सुनिश्चित एवं सार्थक प्रयोजन में केंद्रित करना ही योगाभ्यास है। शक्तियों का यह सही उपयोग जीवन में स्पष्ट और आश्चर्यजनक परिणाम सामने लाता है। पिछड़ेपन के स्थान पर प्रगतिशीलता आ जाती है। दरिद्रता समृद्धि में परिणत हो जाती है। भटकाव की जगह प्रचंड पुरुषार्थ प्रवृत्ति पनपने पर परिस्थितियाँ अनुकूल बनने लगती हैं और साधन संचित होने लगते हैं। लौकिक सफलताएँ भी लक्ष्य केंद्रित पुरुषार्थ का ही परिणाम होती हैं। मन की भटकन रोककर ही उसे लक्ष्योन्मुख बनाया जा सकता है।

यही सधा हुआ मन आत्मिक क्षेत्र में लगाए जाने पर सुषुप्त शक्ति केंद्रों को जागृत व क्रियाशील बनाता है और दिव्य क्षमताएँ प्रकाश में आती हैं। अंतःचेतना का परिष्कार सामान्य व्यक्ति को महामानव स्तर पर ले जाकर ही रहता है। प्रगति का संपूर्ण इतिहास मनःशक्ति के पुंजीभूत, लक्ष्य केंद्रित पुरुषार्थ की ही यश-गाथा है। चंचलता की प्रवृत्ति को पुरुषार्थ की प्रवृत्ति में परिवर्तित करने का पराक्रम ही प्रगति का सार्वभौम आधार रहा है।

मन की दूसरी प्रवृत्ति है—सुख-लिप्सा। शारीरिक सुखों के भोग का माध्यम है—इंद्रियाँ। उनके द्वारा विभिन्न वासनाओं का स्वाद मिलता है। पेट और प्रजनन से संबंधित सुखों के लिए तरह-तरह की चेष्टाओं में ही मन उलझा रहता है और इन सुखों की प्राप्ति के लिए प्रेरणा ही नहीं देता, बल्कि इनकी मात्र कल्पनाएँ

करने में भी बहुत अधिक समय नष्ट करता है। फिर इन भौतिक सुखों के लिए साधन जुटाने में भी मन को जाने कितने ताने-बाने बुनने पड़ते हैं। इंद्रियों की प्रिय वस्तु या व्यक्ति देखने, सुनने, छूने, सूँघने अथवा स्वाद लेने की लिप्साएँ मन को ललक से भर देती हैं और वह उसी दिशा में लगा रहता है। अहंकार की पूर्ति के लिए मन औरों पर प्रभाव डालने हेतु तरह-तरह की चेष्टाएँ करता है और व्यक्ति भाँति-भाँति के ठाट-बाट बनाता है। संग्रह और स्वामित्व की इच्छाएँ भी अनेक विधि प्रयत्नों का कारण बनती हैं। इन सभी इच्छाओं, आकांक्षाओं की प्यास को व्यक्त करने के लिए ही तृष्णा शब्द का प्रयोग होता है। अहं-भावना पर आघात पहुँचते ही प्रतिशोध की उत्तेजना प्रबल हो उठती है। इच्छित विषय पर अपना हक मान लेना और फिर उसके न प्राप्त होने या प्राप्ति में बाधा पड़ने पर भड़क उठना भी, अहंता पर आघात के ही कारण होता है। यह उत्तेजना ही क्रोध है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि संपूर्ण विकार-समूह वस्तुतः मन में उठने वाली प्रतिक्रियाएँ मात्र हैं, जो भौतिक सुख की लिप्साओं के कारण उठती रहती हैं। लिप्सा की इस ललक की दिशा को उलट देना ही 'तप' है। वह दूसरी दिशा भौतिक सुखों की वासना, तृष्णा और अहंता की पूर्ति से होने वाले क्षणिक सुखों की नहीं है वरन् आनंद की है। आनंद उपभोग से नहीं, उत्कर्ष और उत्सर्ग से प्राप्त होता है। सुख मन का विषय है, जबकि आनंद और आत्म-संतोष आत्मा का। सुख लिप्सा का अभ्यस्त मन आनंद के स्वाद को नहीं जान पाता और जिसे जाना ही नहीं, उसके प्रति गहरी और स्थायी प्रीति, सच्चा आकर्षण संभव नहीं। आनंद की आकांक्षा विषयलोलुप मन में प्रगाढ़ नहीं होती। उसके लिए तो मन का प्रशिक्षण आवश्यक है। यह प्रशिक्षण-प्रक्रिया ही तप है। तपस्वी को कष्ट इसी अर्थ में सहना पड़ता है कि अभ्यस्त सुख का अवसर जाता रहता है। शारीरिक सुख-सुविधाएँ सिमटती हैं। मानसिक आमोद-प्रमोद का भी अवकाश नहीं रहता और आदर्शनिष्ठ आचरण आर्थिक समृद्धि के भी आड़े

ही आता है। प्रत्यक्ष तौर पर तो ऐसे परिणामों के लिए किया जाने वाला प्रयास मूर्खता ही प्रतीत होगा।

लेकिन श्रेष्ठ उपलब्धियों का राज-मार्ग यही है। किसान, विद्यार्थी, पहलवान, श्रमिक, व्यवसायी, कलाकार आदि को भी अपनी प्रगति व उपलब्धियों की प्राप्ति के लिए बाल-चंचलता से मन को विरत ही करना पड़ता है और अपने नीरस प्रयोजनों में ही मनःशक्ति नियोजित करनी पड़ती है। शौक-मौज के अभ्यस्त उनके संगी उन लोगों की ऐसी लक्ष्योन्मुख प्रवृत्तियों का मजाक भी उड़ाते हैं। लेकिन सभी जानते हैं कि अंततः बुद्धिमान् और प्रगतिशील ऐसे ही लोगों को माना जाता है, जो चित्त की चपलता को नियंत्रित कर उसे अपने लक्ष्य की ओर ही लगाए रहते हैं—वह कृषि का क्षेत्र हो या शिक्षा का, शरीर-सौष्ठव का हो या आर्थिक समृद्धि का, कला-कौशल का हो या वैज्ञानिक आविष्कार का अथवा दार्शनिक चिंतन-मनन का।

भारतीय मनीषियों ने मन को संस्कारित व परिष्कृत करने के लिए पंचकोशीय साधना विधान में मनोमय कोश की साधना का एक स्वतंत्र चरण ही रखा है। मनोमय कोश का अर्थ है—विचारशीलता, विवेक-बुद्धि।

● मनोमय कोश—अर्थ और साधना

मन कोई ऐसा तत्त्व नहीं है जो केवल मनुष्य के पास ही है। वह हर जीवित प्राणी के पास होता है। कीट-पतंग भी उससे रहित नहीं हैं, परंतु मनोमय कोश के व्याख्याकारों ने उसे दूरदर्शिता, तर्क, प्रखरता एवं विवेकशीलता के रूप में विस्तारपूर्वक समझाया है। मन की स्थिति हवा की तरह है। वह दिशा विशेष तक सीमित न रहकर, स्वेच्छाचारी वन्य पशु की तरह किधर भी उछलता-कूदता है ? पक्षियों की तरह किसी भी दिशा में चल पड़ता है ? इसे दिशा देना, चिंतन को अनुपयोगी प्रवाह में बहने से बचाकर, उपयुक्त मार्ग

पर सुनियोजित करना मनस्वी होने का प्रधान चिह्न है। मनोनिग्रह-मनोजय इसी का नाम है। जंगली को पकड़कर अनुशासित बनाने का काम तो कठिन है, पर इसकी उपयोगिता अत्यधिक है। जंगली हाथी फसलें उजाड़ते और झोंपड़ियाँ तोड़ते हैं और भूखे-प्यासे अनिश्चित स्थिति में भटकते हैं, किंतु पालतू बन जाने पर उसकी जीवनचर्या भी सुनिश्चित हो जाती है और साथ ही वे अपने मालिक का भी बहुत हित साधन करते हैं। सधे हुए मन की तुलना पालतू हाथी से की जा सकती है और अनियंत्रित मन को उन्मत्त जंगली हाथी कहा जा सकता है।

आवेग और आवेशग्रस्त होकर उन उत्तेजनाओं से प्रेरित मनुष्य कुछ भी सोच सकता है और कुछ भी कर गुजर सकता है। वह चिंतन और कर्तृत्व इतना असंगत हो सकता है कि फलस्वरूप जीवन भर पश्चाताप करना पड़े और असीम हानि उठानी पड़े, किंतु आवेगों के प्रवाह में बुद्धि पर पर्दा पड़ जाता है और कुछ सूझ नहीं पड़ता। उन्मत्तों की तरह दूसरों की हत्या, आत्म-हत्या न सही ऐसे काम तो सहज ही बन पड़ते हैं, जिन पर शांत मनःस्थिति में विचार करने पर स्वयं ही अपने पर क्रोध आता है। असंख्य मनुष्य ऐसे ही उद्धत कर्म करते हैं अथवा मरे हुए मन से अकर्मण्य बने हुए जीवन की लाश ढोते हैं। स्थिति से उबरने का कोई प्रकाश भी उन्हें नहीं मिलता।

प्रायः एक समय में एक प्रकार के विचार एक ही दिशा में दौड़ते हैं। यह प्रवाह जिधर भी चलता है उधर लाभ ही लाभ, औचित्य ही औचित्य दिखाई पड़ता है, जबकि वास्तविकता कुछ और ही होती है। प्रवाह को रोक कर, धारा द्वारा उससे बाँध या बिजलीघर बनाए जाते हैं। मन के प्रवाह को जब दूसरी प्रतिरोधी शक्ति से रोका जाता है, उचित-अनुचित के मंथन से उलट-पुलट कर नवनीत निकाला जाता है, तब पता चलता है कि क्या सोचना सार्थक है क्या निरर्थक ? लाभ किसमें है और हानि किसमें ?

तत्काल के क्षणिक लाभ को ही सब कुछ न मानकर, भविष्य के चिरस्थायी परिणाम का विचार करने में समर्थ एवं परिपक्व बुद्धि, मन के प्रवाह को अवांछनीय दिशा में रोक सकती है, उसे उचित में नियोजित कर सकती है। इस परिष्कृत चिंतन-प्रक्रिया को मनोमय कोश की उपलब्धि कह सकते हैं।

महामनीषी, तत्त्वदर्शी, शोधकर्ता एवं मनस्वी व्यक्ति ही महा मानवों की पंक्ति में बैठ सकने में समर्थ हुए हैं। उन्होंने संसार का नेतृत्व किया है और अपने महान् कर्तृत्वों से इतिहास को यशस्वी किया है। इन सभी की यह प्रमुख विशेषता रही है कि उन्होंने अपने मन पर अंकुश करना और उसे दिशा देना सीखा। सामान्य लोगों का मन हवा के साथ उड़ते-फिरने वाले तिनके की तरह अपनी मानसिक चेतना को निरर्थक अथवा अनर्थ मूलक स्थिति में भटकने देता है, जबकि मनस्वी व्यक्ति उसकी प्रत्येक लहर को सुनियोजित करता है। उचित और अनुचित की कसौटी का अंकुश रखकर मन को उसी दिशा में, उसी गति से चलने देता है; जिससे कुछ महत्त्वपूर्ण हित साधन हो सके।

इच्छाओं को मोड़ने में, चिंतन को सुनियोजित करने में सफलता प्रखर-तर्क बुद्धि से उत्पन्न होती है और आत्म-दमन कर सकने की साहसिकता से मनोनिग्रह बन पड़ता है। एकाग्रता का, चित्त-वृत्ति-निरोध का बहुत माहात्म्य योगशास्त्रों में बताया गया है। इसका अर्थ चिंतन-प्रक्रिया को ठप्प कर देना, एक ही ध्यान में निमग्न रहना नहीं, वरन् यह है कि विचारों का प्रवाह नियत-निर्धारित प्रयोजन में ही निष्ठापूर्वक लगा रहे। यह कुशलता जिनको करतलगत हो जाती है, वे जो भी लक्ष्य निश्चित करते हैं, उसमें प्रायः अभीष्ट सफलता ही प्राप्त करते रहते हैं। बिखराव की दशा में चिंतन की गहराई में उतरने का अवसर नहीं मिलता अस्तु किसी विषय में प्रवीणता और पारंगतता भी हाथ नहीं लगती। संसार में विशेषज्ञों का स्वागत होता है, यहाँ हर क्षेत्र में 'ए-वन' की माँग है

और वह उपलब्धि कुशाग्र बुद्धि पर नहीं, सघन मनोयोग के साथ संबद्ध है। यह मनोयोग का वरदान प्राप्त करने के लिए जो प्रयास-व्यायाम करने पड़ते हैं, उन्हें ही मनोमय कोश की साधना कहते हैं।

मनोमय कोश की साधना मस्तिष्कीय क्षेत्र में घुसे मनोविकारों को, दुष्प्रवृत्तियों को, निरस्त करने के लिए लड़ा जाने वाला महाभारत है; साथ ही इसमें धर्म राज्य की, राम राज्य की, स्थापना का लक्ष्य संकल्प भी जुड़ा हुआ है।

इस संदर्भ में वैज्ञानिक-अनुशीलन प्रयत्न ध्यान देने योग्य है। बहुत समय पहले शारीरिक रोगों का कारण, वात, पित्त, कफ, अपच, मलावरोध, ऋतु प्रभाव, विषाणुओं का आक्रमण आदि माना जाता था। नवीनतम शोधें शरीर पर पूरी तरह मनःसत्ता का अधिकार मानती हैं और बताती हैं कि बाह्य कारणों से उत्पन्न हुए रोग तो शरीर की जीवनी शक्ति स्वयं ही अच्छी कर लेती हैं अथवा मामूली उपचार से अच्छे हो सकते हैं। जटिल रोग तो आमतौर से मनोविकारों के ही परिणाम होते हैं। उनका निराकरण दवादारू से नहीं, मानसिक परिशोधन से ही संभव हो सकता है।

शारीरिक ही नहीं मानसिक रोगों का भी यही प्रधान कारण है। दुष्कर्म अथवा दुर्बुद्धिग्रस्त व्यक्ति शारीरिक ही नहीं, मानसिक रोगों से भी ग्रसित रहते हैं। उन्माद-विस्फोट की स्थिति न आए तो भी असंतुलन से ग्रस्त व्यक्ति अर्ध-विक्षिप्त स्थिति में पड़े रहते हैं। अकारण दुःख पाते और अकारण दुःख देते हैं। इनकी मनःस्थिति कितनी दयनीय होती है ? यह देखने भर से बड़ा कष्ट होता है। शारीरिक व्यथाओं से पीड़ितों की अपेक्षा मनोवेगों से ग्रस्त लोगों की संख्या ही नहीं पीड़ा भी अधिक है। इन व्यथाओं से छुटकारे का उपाय अस्पतालों में नहीं, मानसिक संशोधन की साधनाओं पर ही अवलंबित है। वे उपाय, उपचार अन्य प्रकार भी हो सकते हैं, पर

अध्यात्म विज्ञान के आधार पर उसे मनोमय कोश की, साधना से अधिक सुविधापूर्वक संपन्न किया जा सकता है।

काय-विज्ञान के विद्यार्थी जानते हैं कि मस्तिष्क के साथ जुड़े हुए ज्ञान-तंतु सारे शरीर में फैले हैं। उन्हीं के माध्यम से इस जटिल यंत्र का संचालन होता है। इंद्रियों की क्रियाशक्ति, अनुभूतियाँ, सरसताएँ मस्तिष्क में ही जाकर खुलती हैं। इंद्रिय गोलक तो मात्र सूचनाएँ संग्रह करने और उन्हें मस्तिष्कीय केंद्रों तक पहुँचाने भर का काम करते हैं। कोई मानसिक कष्ट होने पर सारा शरीर शिथिल हो जाता है और क्रियाशक्ति में स्पष्टतः अस्त-व्यस्तता दीखने लगती है। भय, चिंता, शोक, निराशा जैसे प्रसंगों पर किसी भी मनुष्य का चेहरा उदास और सारा शरीर शिथिल देखा जा सकता है। क्रोध, अपमान, द्वेष, प्रतिशोध की स्थिति में किस प्रकार अंग-प्रत्यंगों में उत्तेजना दीख जाती है, इसे किसी आवेशग्रस्त पर छाए हुए भावोन्माद को देखकर सहज ही देखा-समझा जा सकता है। प्रसन्न और निश्चित रहने वाले स्वस्थ रहते और दीर्घजीवी बनते हैं। इसके विपरीत क्षुब्ध रहने वाले अकारण दुर्बल हो जाते हैं और अकाल मृत्यु से असमय मरते हैं। यह तथ्य स्पष्ट करते हैं कि शरीर-संस्थान पर आहार-विहार का, जलवायु का जितना प्रभाव पड़ता है, उससे कहीं अधिक प्रभाव भाव-संस्थान का होता है।

शरीर में स्नायुमंडल द्वारा तथा नलिकाविहीन ग्रंथियों द्वारा भावनाएँ क्रियाशील होती हैं। हमारे संपूर्ण शरीर में स्नायुओं का जाल बिछा हुआ है। सामान्यतः स्नायु उज्ज्वलवर्णी होते हैं और तार की तरह ठोस होते हैं। हमारी सभी पेशियाँ स्नायुओं के ही आधार पर चलती हैं। प्रत्येक पेशी में पहुँचने वाला मुख्य स्नायु सुतली की तरह मोटा होता है। फिर उसकी शाखा-प्रशाखाएँ अधिकाधिक पतली होती चली जाती हैं। कई प्रशाखाएँ तो बारीक सूत जैसी पतली होती हैं।

संपूर्ण स्नायुमंडल के दो भाग हैं—(१) ऐच्छिक (२) अनैच्छिक। चलने-फिरने, झुकने-मुड़ने, वस्तुएँ उठाने, रखने आदि की क्रियाओं में हम अपने हाथ-पैर आदि को इच्छानुसार हिलाते हैं। यह ऐच्छिक स्नायुओं के ही कारण है। अनैच्छिक स्नायुओं पर हमारा ऐसा अधिकार नहीं होता। वे शरीर की आंतरिक क्रियाएँ संपादित करते हैं। जैसे—हृदय की धड़कनें, साँसों का आना-जाना आदि।

अनैच्छिक स्नायुमंडल का केंद्र मस्तिष्क का एक लघु अंश हाइपोथेलामस होता है। यही 'हाइपोथेलामस' नारी व पौरुष ग्रंथियों को भी नियंत्रित करता है। साथ ही 'मोनोएमीन ऑक्सीडज' नामक किण्वज (एंजाइम) भी संपूर्ण शरीर में विकीर्ण होते हुए भी केंद्रीय स्नायुविक प्रणाली में विशेष रूप से जमा रहता है। 'हाइपोथेलामस' द्वारा पिट्यूटरी ग्रंथि भी उत्तेजित होती है और उससे विभिन्न हार्मोन्स निकलते हैं, जो भावनाओं का परिणाम भी होते हैं और नई भावनाओं का कारण भी। किसी नई परिस्थिति के उपस्थित होने पर नलिकाविहीन ग्रंथियों पर दबाव पड़ता है और वे विभिन्न हारमोनों को स्रवित करती हैं। इन हारमोनों की शरीर में प्रतिक्रिया होती है और यह प्रतिक्रिया उसी के अनुरूप भावना समूहों को जन्म देती है। जैसे किसी रोग के कीटाणुओं के संक्रमण-दबाव से पिट्यूटरी ग्रंथि ने कोई हारमोन छोड़ा, इससे शरीर में तेज हलचल मच गई, व्यक्ति को अस्वस्थता महसूस होने लगी और वह खाट पर पड़ गया। अब बीमारी की दशा में तरह-तरह की भावनाएँ जो अचेतन में दबी थीं, उभरने लगीं। उनके परिणामस्वरूप अनेक प्रकार की शारीरिक प्रतिक्रियाएँ भी पैदा होने लगती हैं।

मनोमय कोश का निवास मस्तिष्क में बताए जाने का अर्थ केवल इतना ही है कि उसका केंद्रीय कार्यालय वहीं है। उसके सूक्ष्म अवयव उसकी शाखा-प्रशाखाएँ तो संपूर्ण शरीर में व्याप्त-विस्तृत हैं। मस्तिष्क के जीवाणु अन्य जीवाणुओं से अधिक

समझदार और अनुभवी होते हैं। इसीलिए वे शेष जीवाणुओं के अगुआ नेता कहे जाते हैं। वे जिस दिशा में चलते हैं, शेष जीवाणु भी उसी दिशा धारा में बहने लगते हैं। संपूर्ण सूक्ष्म शरीर को स्वस्थ, प्रसन्न, उल्लसित, प्रगतिशील बनाए रखने के लिए मस्तिष्कीय-स्थिति भी वैसी ही होनी जरूरी है। नेता ही निराश-हताश, कुंठित-त्रस्त हुआ, तो प्रगति की क्या आशा की जा सकती है ? नेता का संवेग समस्त अनुयायियों को प्रभावित करता है।

वियना के मनोचिकित्सक डॉ० फैंकल का मत है कि मानसिक-धरातल ही शारीरिक स्वास्थ्य का आधार है। मानसिक असंतुलन का कारण जीवन की सार्थकता को न समझना है। इसीलिए उन्होंने 'लोगोथेरेपी' या 'अर्थबोधचिकित्सा' नाम की चिकित्सा पद्धति विकसित की है। डॉ० फैंकल की मान्यता है कि जिस व्यक्ति को अपने जीवन और कार्य की सार्थकता का बोध हो, वह स्वस्थ नहीं रह सकता। मनुष्य जीवन के लक्ष्य और उनकी सिद्धि ही आनंद का आधार है। डॉ० फैंकल की चिकित्सा पद्धति में रोगी से प्रिय-अप्रिय सभी विषयों पर चर्चा कर, उसे जीवन की सार्थकता की तलाश की प्रेरणा दी जाती है। व्यक्ति को जैसे ही जीवन में सार्थकता की अनुभूति हो उठती है, वह अपने भीतर निहित शक्तियों का स्मरण कर आत्म-विश्वास से भर उठता है और धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगता है। मनक्षेत्र की स्वस्थता उसके स्थूल शरीर को भी स्वस्थ बना देती है।

सूक्ष्म शरीर की हलचलों का स्थूल शरीर पर स्पष्ट एवं निश्चित परिणाम होता है। तंत्रकीय रोगों का कारण दबे हुए गंदे विचार ही होते हैं। शरीरशास्त्रियों का भी मत है कि मात्र मानसिक चित्रों के आधार पर ही अनेक शारीरिक बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। "इन्फ्लुएन्स ऑफ द माइंड अपान द बॉडी" नामक पुस्तक के लेखक डॉ० टुके ने लिखा है—"विक्षिप्तता, मूढ़ता, अंगों का निकम्मा

हो जाना, पित्त, पांडुरोग, केश-पतन, रक्ताल्पता, घबराहट, मूत्राशय के रोग, गर्भाशय में पड़े बच्चे का अंग-भंग हो जाना, चर्मरोग, फुन्सियाँ, फोड़े, एग्जिमा आदि अनेक स्वास्थ्यनाशक रोग मात्र मानसिक क्षोभ तथा भावनात्मक उद्वेलन के परिणाम होते हैं।" मानसिक क्षोभ भावनात्मक उद्वेलन, निषेधात्मक चिंतन, सूक्ष्म शरीर की विकृतियाँ हैं, जिनका स्थूल शरीर पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार परिष्कृत दृष्टिकोण, स्वस्थ-उदात्त चिंतन, आदर्शवादी विचारधारा सूक्ष्म-शरीर को तेजस्वी-प्रखर बनाती हैं और उसका श्रेष्ठ प्रभाव स्थूल शरीर पर भी स्पष्ट देखा जा सकता है।

विधेयात्मक विचारों की, ऊर्ध्वमुखी चिंतन की आश्चर्यजनक महत्ता के प्रतिपादन में डॉ० बैनेट ने स्वयं को ही प्रस्तुत किया है। ५० वर्ष की आयु तक डॉ० बैनेट निराशा और अवांछनीय चिंतन के कारण अपना स्वास्थ्य पूरी तरह गँवा बैठे। उन्हें जब ऊर्ध्वगामी चिंतन की इस असीम उपादेयता का पता चला तो उन्होंने अपना जीवन-क्रम ही बदल डाला। मन की जड़ता और विषय-विकारों का जुआ उन्होंने उतार फेंका, हृदय को श्रद्धा-आस्था से भरा, सदैव प्रसन्न-प्रफुल्ल रहने की आदत बना ली। २० वर्षों के अपने इस जीवन को स्वर्गीय सुख से ओत-प्रोत बनाते हुए डॉ० बैनेट ने अपनी ५० वर्षीय फोटो तथा ७० वर्षीय फोटो भी इस पुस्तक में छापी है। पहली में उनका चेहरा झुर्रियों से पिचके गाल, धँसी आँखों के कारण मनहूस दिखायी देता है, जबकि ७० वर्ष की आयु में स्वस्थ-सशक्त दिखायी देते हैं, झुर्रियाँ न जाने कहाँ चली गईं, चेहरे पर उद्दीप्ति है और युवकों जैसी सक्रियता आ गई।

अब तक किए गए ऐसे ही विविध आधुनिक प्रयोगों से स्पष्ट हो गया है कि मन-मस्तिष्क का कष्ट प्रत्येक जीवाणु को कष्ट में डाल देता है। घृणा, ईर्ष्या, क्रोध का अनिष्ट प्रभाव समस्त जीवाणुओं में तुरंत दौड़ जाता है, झलक उठता है। मस्तिष्क में प्रसन्नता का भाव आते ही प्रत्येक जीवाणु प्रसन्न-पुलकित हो उठता है। ये सभी जीवाणु परस्पर गहन आत्मीयता और अभिन्नता का भाव रखते हैं। प्रत्येक

जीवाणु की दशा से सभी प्रभावित होते हैं—इसका सुख-दुःख मिला-जुला ही होता है। इनका पारस्परिक सौहार्द्र-सद्भावना अनूठा है। सच्ची मैत्री, प्रगाढ़ आत्मीयता सहानुभूति के ये अनूठे उदाहरण हैं। कल्पना करें कि एक व्यक्ति को तेज भूख लगी है और उसके सामने सुस्वादु भोजन का थाल है। उसी समय किसी प्रियजन की मृत्यु का तार मिलता है। उसे पढ़ते ही मस्तिष्क में उस प्रियजन की संचित स्मृति सहसा जाग्रत् हो उठती है। मन में आत्मीय संवेदना उमड़ पड़ती है। मस्तिष्क के जीवाणुओं में हलचल, उथल-पुथल मच जाती है। मस्तिष्क के जीवाणुओं की इस प्रतिक्रिया का तत्काल संपूर्ण शरीर के जीवाणुओं पर प्रभाव पड़ता है। जीभ सूखने लगती है। भूख बढ़ाने वाले जीवाणु जो उछल-कूद मचा रहे थे, चीख-चीखकर भोजन की माँग कर रहे थे, सहमकर शांत, निष्क्रिय, दुबके से बैठ जाते हैं। हृदय और दूसरे अंग भी निष्प्राण से हो चलते हैं। दिल डूबने लगता है, आँखों के सामने अंधेरा छा जाता है; शरीर निढाल हो जाता है। समस्त अंगों पर यह प्रभाव पड़ता है। स्पष्ट है कि मस्तिष्कीय जीवाणुओं की भावदशा का तत्काल प्रभाव संपूर्ण शरीरस्थ जीवाणु-समूहों पर पड़ता है।

'ओल्ड एज : इट्स कॉज़ एंड प्रिवेन्शन' नामक पुस्तक में उसके रचयिता सुप्रसिद्ध अमेरिकी वैज्ञानिक तथा लेखक डॉ० बैनेट ने एक बहुत ही मनोरंजक किंतु शिक्षाप्रद घटना दी है। एक १६ वर्षीय फ्रांसीसी युवती ने एक अमेरिकन नव-युवक से विवाह का निश्चय किया। युवक निर्धन था, सो यह तय हुआ कि पहले वह अमेरिका जाकर धन कमायेगा और लौटकर शादी करेगा। युवक ने ३ वर्ष में पर्याप्त धन कमा लिया, पर दुर्भाग्य से कोई मुकदमा लग जाने के कारण वह १५ वर्ष तक फ्रांस नहीं लौट सका। १५ वर्ष बाद जब वह वापस लौटा, तो यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि उसकी मँगेतर का स्वास्थ्य, सौंदर्य बिलकुल वैसा ही है जैसा वह १६ वर्ष पूर्व था। ३४ वर्ष की अधेड़ अवस्था हो जाने पर उसमें १६ वर्षीय नवयुवती के गुण विद्यमान थे।

घटना का विवेचन करते हुए बैनेट महोदय लिखते हैं—प्रकृति ने मनुष्य शरीर की संचालन क्रिया-प्रक्रिया इस प्रकार रखी है कि शरीर का प्रत्येक कोश (सैल) ८० दिन पीछे पुराना होकर मैल के रूप में उसी प्रकार बाहर निकल जाता है; जिस प्रकार समुद्री लहरों में निरंतर ज्वार-भाटे से समुद्र की गंदगी तटों पर जमा होती रहती है। कोश-परिवर्तन की यह प्रक्रिया आयु बढ़ने के साथ क्षीण होती रहती है, उसी का नाम वृद्धावस्था है। किंतु इस उद्धरण ने प्राकृतिक व्यवस्था को ही उलट दिया, ऐसा क्यों ?

इसका उत्तर युवती के मुँह से दिलवाते हुए श्री बैनेट लिखते हैं कि "मैं प्रतिदिन प्रातःकाल एक आदमकद शीशे के सम्मुख खड़ी होकर, अपना चेहरा देखती और मन ही मन अनुभव करती कि मैं ठीक वैसी ही हूँ जैसी कल थी। दिन के परिवर्तन ने मेरे शरीर में कोई प्रभाव नहीं डाला। इच्छा शक्ति की यह दृढ़ता मुझे दिन भर पुलकित और प्रसन्न बनाए रखती। उसी का फल है, जो मैं जैसी १५ वर्ष पूर्व थी वैसी ही आज भी हूँ।" सूक्ष्म शरीर के शोधन की, विचारों को ऊँचा उठाने की संकल्प की महत्ता उन्होंने अमेरिका के अध्यात्म परायण व्यक्ति डॉ० मारडान की पुस्तक "लौह इच्छा शक्ति" (ऐन आइरन विल) से समझी, जिसमें बताया गया है—"मनुष्य अपने विचार नये करले, चरित्र को ऊँचा उठा ले, तो अपना शरीर ही बदल सकता है।" यह स्वाध्याय उनके लिए तो औषधि बना ही, सैकड़ों को नया जीवन देने वाला है। प्रेम, मैत्री, दया, करुणा और परोपकारी विचारों को धारण कर कोई भी इसका प्रत्यक्ष लाभ ले सकता है।

खोपड़ी के ऊपर या नीचे की रक्तवाहिनियों की पेशियाँ भावनाओं के अनुसार फैलती, सिकुड़ती व तीव्र संवेदनात्मक प्रतिक्रियाएँ करती हैं।

अस्वस्थ भावनाएँ विभिन्न शारीरिक रोगों का कारण बनती हैं। सामान्य सिर दर्द से लेकर "माईग्रेन" नामक कठिन सिर दर्द भावनात्मक तनाव से होता है। इस तनाव से खोपड़ी की

रक्तवाहिनियाँ सिकुड़ती हैं और उससे सिर दर्द शुरू हो जाता है। आज तो यह पाया जाता है कि सिर दर्द की सौ घटनाओं में से पचासी का कारण भावनात्मक तनाव होता है।

भावना-विक्षोभ के कारण पेशियों में उत्पन्न तनाव के कारण कई बार लोग भोजन के बाद ऐसा अनुभव करते हैं कि कलेजे पर बोझ आ पड़ा है और भोजन नीचे सरक ही नहीं रहा है। अधिक तनाव होने पर उबकाई आने लगती है, जी मिचलाने लगता है।

भावनात्मक तनाव से उत्पन्न स्नायु-रोगों में डकारें आना, पेट में ऐंठन होना, विभिन्न वायु-विकार, अनेक त्वचा-विकार, एग्जिमा, खुजली आदि होते हैं।

कमर-दर्द के बारे में अब ऐसा ज्ञात हुआ है कि अधिकांश मामलों में इसका कारण भावनात्मक तनाव ही होता है।

यह जान लेने पर कि भावनात्मक तनावों एवं विकृतियों से ही अधिकांश रोग पैदा होते हैं, यह प्रश्न अनेकों को कचोटता है कि भावनाओं पर नियंत्रण कैसे हो ? इसका एक ही सरल मार्ग है—समझदारी भरे दृष्टिकोण का नित्य-प्रति के जीवन में अभ्यास करना। बिना अभ्यास के यह दृष्टिकोण व्यावहारिक जीवन में नहीं उतरता। जिंदगी को बोझ न मानते हुए, खेल-भावना से जीना, अभ्यास द्वारा ही संभव है। अपनी सीमाओं को पहचानना, शक्ति के सर्वोत्तम उपयोग की व्यवस्था करना, 'मैं-मैं' की चीख पुकार से मुक्त होकर अपने दायित्वों को समझना और निभाना तथा सृजनात्मक वृत्तियों का जीवन में निरंतर विकास करना ही एकमेव राजमार्ग है।

सामान्यतः कठोरता, क्रोध, बात-चीत में लड़-बैठने आदि को हम भ्रांतिवश शक्ति का पर्याय मान बैठते हैं, जबकि मनोवैज्ञानिक इन सबको 'बचकानी हरकतें' मानते हैं। ये दुर्बलता के प्रतीक हैं। शक्तिशाली व्यक्ति विनम्र एवं दृढ़ होता है। क्रोध और झगड़ालूपन तो शक्तिहीनता की उपज है। सादगी-संयम का अभ्यास ही शक्ति का स्रोत है, किंतु अपनी दुर्बलताओं पर व्यर्थ की खीझ भी लाभकर न होगी।

धीरे-धीरे ही कुसंस्कार चित्त तल पर जमते हैं और धीरे-धीरे ही उनका उन्मूलन संभव है। सतत् अभ्यास ही सर्वोत्तम उपचार है। इस बात को सदा ध्यान में रखा जाए कि मन की कुटिलता और अनैतिक कर्म ही रोग का आधार है तथा मन की शुचिता, स्नेह, करुणा और व्यापक मानवीय प्रेम द्वारा इन रोगों को मिटा सकना सरलता से संभव है।

मस्तिष्क की धुलाई-सफाई वैज्ञानिक उपकरणों से भी संभव हो सकती है। फिर अध्यात्म साधना के उपचार तो उससे अधिक ही सशक्त समर्थ होते हैं। उनका प्रभाव तो और भी अधिक होना चाहिए।

इलेक्ट्रिकल स्टीम्यूलेशन ऑफ ब्रेन (ई० एस० बी०) पद्धति के अनुसार कई एशियन विश्वविद्यालयों ने आंशिक रूप से मस्तिष्क की धुलाई (ब्रेन वाशिंग) में सफलता प्राप्त कर ली है। अभी यह बंदर, कुत्ते, बिल्ली, खरगोश, चूहे जैसे छोटे स्तर के जीवों पर ही प्रयोग किये गए हैं। आहार की रुचि, शत्रुता, मित्रता, भय, आक्रमण आदि के सामान्य स्वभाव को जिस प्रकार चरितार्थ किया जाना चाहिए, उसे वे बिल्कुल भूल जाते हैं और विचित्र प्रकार का आचरण करते हैं। बिल्ली के सामने चूहा छोड़ा गया तो वह आक्रमण करना तो दूर उससे डरकर एक कोने में जा छिपी। क्षण भर में एक-दूसरे पर खूनी आक्रमण करना, एक आध मिनट बाद परस्पर लिपटकर प्यार करना यह परिवर्तन उस विद्युत् क्रिया से होता है, जो उनके मस्तिष्कीय कोशों के साथ संबद्ध रहती है। यही बात मनुष्यों पर भी लागू हो सकती है। मानव मस्तिष्क अपेक्षाकृत अधिक परिष्कृत होता है। उसमें प्रतिरोधक शक्ति भी अधिक होती है, इसलिए उसमें हेर-फेर करने के लिए प्रयास भी कुछ अधिक करने पड़ेंगे और सफलता प्राप्त करने में देरी भी लगेगी, पर जो सिद्धांत स्पष्ट हो गये हैं, उनके आधार पर यह निश्चित हो गया है कि मनुष्य को भी जैसा चाहे सोचने, मान्यता बनाने और गतिविधियाँ अपनाने के लिए विवश किया जा सकता है।

मनोमय कोश की साधना मस्तिष्कीय क्षेत्र की धुलाई, सफाई ही नहीं करता, वरन् उसे समुन्नत, सुसज्जित एवं सुसंस्कृत बनाने का काम भी बहुत हद तक पूरा कर सकती है।

मनोमय कोश शरीर और मस्तिष्क के समूचे क्षेत्र को अपने अंचल में समेटे हुए है। वह इन दोनों क्षेत्रों को प्रभावित करता है। अंतःकरण के अस्त-व्यस्त और विकृत स्थिति के बने रहने पर उसकी प्रतिक्रिया शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर विनाशकारी प्रभाव डालती है। व्यक्तित्व लड़खड़ा जाने पर दृष्टिकोण और व्यवहार दोनों ही गड़बड़ाते हैं। फलतः गतिविधियाँ अवांछनीयता से भर जाती हैं। स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में विपत्तियाँ ही उत्पन्न होंगी। अवरोध ही खड़े होंगे। कलह और संकट आक्रमण करेंगे। समूचा जीवन ही नरक बन जायेगा। इस नारकीय यंत्रणा से छुटकारा कोई और नहीं दिला सकता, क्योंकि इस विपत्ति का दोष भले ही किसी पर थोपा जा सके, उसका कारण अपना आपा ही होता है। मनःस्थिति के अनुरूप परिस्थिति बनने का तथ्य इतना स्पष्ट है कि उसे झुठलाए जाने की कहीं कोई गुंजाइश नहीं है। अपने आप में परिवर्तन किए बिना हम इस नरक से अन्य किसी तरह उबर नहीं सकते। जीवनक्रम में उत्पन्न विविध-विधि अवरोधों से छुटकारा पाए बिना हमारा उद्धार हो नहीं सकता। समस्याओं और विपन्नताओं से त्राण मिल नहीं सकता।

समृद्धि, प्रगति और सुख-शांति की समस्त संभावनाएँ बीज रूप में अपने ही भीतर भरी पड़ी हैं। सत्प्रवृत्तियों की देवी और सद्भावनाओं के देवता ही हमें दिव्य वरदानों से सुसंपन्न बनाते हैं। अंतरंग की विभूतियाँ ही बहिरंग की सिद्धियाँ बनकर, सामने आती हैं। आत्मशोधन, आत्म परिष्कार जीवन का सबसे बड़ा पुरुषार्थ माना गया है। इसे प्रत्यक्ष कल्प-वृक्ष की उपमा दी जा सकती है।

मनोमय कोश का विज्ञान और साधन हमारी मानसिक स्थिति के परिष्कार का ऋषि प्रणीत उपाय है। इस दिशा में कदम बढ़ाने पर हम हर दृष्टि से लाभान्वित ही होते हैं।

❑ ❑

मानसिक विक्षोभ से यों न टूटे जाइए

❖

मनुष्य की जिजीविषा साधारणतया अदम्य मानी जाती है। हम जीवित रहना चाहते हैं और जीवन को प्यार करते हैं। साथ ही इस जीवन की सुरक्षा के लिए तरह-तरह के साधन जुटाते हैं। मरण से सभी को भय लगता है, यहाँ तक कि पशु-पक्षी भी प्राण संकट की घड़ी आने पर सब कुछ कर गुजरने के लिए उतारू हो जाते हैं। आत्मरक्षा के प्रयत्नों में सृष्टि के प्रत्येक प्राणी को संलग्न देखा जा सकता है। इससे प्रतीत होता है कि न केवल मनुष्य वरन् हर एक जीवधारी जीवन-संपदा को सुरक्षित रखने के लिए अपनी सूझबूझ और स्थिति के अनुसार हर संभव उपाय करता है। जीवधारी को जीवन के साथ कितना अधिक प्यार है, इस तथ्य की झाँकी नजर पसारकर कहीं भी की जा सकती है।

इसके उपरांत भी कई बार जीवन जैसी बहुमूल्य संपदा को अपने हाथों नष्ट किए जाते देखा गया है। सर्वाधिक प्रिय जीवन-संपदा जिन कारणों से निरर्थक व असह्य बनती जाती है, वह कारण है—मानसिक विक्षोभ। देखने में यही प्रतीत होता है कि अमुक घटनाओं या परिस्थितियों ने अमुक व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए विवश कर दिया, पर वास्तविकता कुछ दूसरी ही होती है। इन लोगों को जो स्थिति असह्य प्रतीत हुई और घबराकर यह अवांछनीय कृत्य कर बैठे, वह वस्तुतः उतनी अधिक जटिल नहीं थी। उन्हीं परिस्थितियों को असंख्य लोग सहन करते हैं और कुछ तो इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि उन्हें जीवन का एक सहज स्वाभाविक अंग मानकर संतोषपूर्वक दिन गुजारते हैं। यदि वे कठिनाइयाँ सचमुच ही इतनी असह्य होतीं तो फिर किसी के लिए भी उनमें रहना कितना कठिन होता ?

विश्व स्वास्थ्य संगठन की संग्रहीत जानकारियों के अनुसार प्रत्येक एक लाख में से ३४ व्यक्ति आत्म-हत्या करके मरते हैं।

संसार के अन्य देशों की तुलना में, इस संदर्भ में, भारत सबसे आगे है। अकेली दिल्ली में एक वर्ष की गणना में ३२५ व्यक्तियों ने आत्म-हत्या की थी, जबकि उस वर्ष हत्याएँ केवल ६० ही हुईं। यह एक नगर की बात हुई। उसी साल राजस्थान में ८७३ व्यक्तियों ने आत्म-हत्या की थी। कोई-कोई अधिक संपन्न और अधिक विलासी नगर भी इस क्षेत्र में भारत को चुनौती देते हैं।

क्लाड हाटन के अनुसार बीसवीं सदी में जितनी आत्म-हत्याएँ हुई हैं, उतनी संसार में इससे पूर्व कभी भी नहीं हुईं। अमेरिकी मनःशास्त्री डॉ० विकवेयर इसका कारण आस्तिकता का अभाव मानते हैं और कहते हैं—"आज का आदमी सुखोपभोग के साधन पाने के लिए जितना आतुर है, उतना ही मनोवांछित स्थिति न पाने पर अत्यधिक विक्षुब्ध भी हो उठता है और उसी अधीरता भरी निराशा से खीजकर पूरा या अधूरा आत्मघात कर लेता है।"

संसार भर में हर नए दिन प्रायः एक हजार व्यक्ति आत्म-हत्या द्वारा स्वेच्छा मृत्यु का वरण करते हैं। बर्लिन आत्म-हत्या निरोधक केंद्र के अध्यक्ष डॉ० कलौजा टॉमस के अनुसार दरिद्र देशों की अपेक्षा संपन्न देशों में यह प्रवृत्ति अधिक पनपी है, इसका कारण उनका खिन्न मानस एवं असंतोष भरा जीवन स्तर है।

मूर्ख, अपढ़, अज्ञानी या विपत्तिग्रस्त लोग ही आत्म-हत्या करते हों, सो बात नहीं। मानसिक विक्षोभ जब सिर पर सवार होता है तो बुद्धिमान् समझे जाने वाले और करोड़ों से अधिक सुविधा संपन्न जीवन जीने वाले भी उस कुकृत्य को करने के लिए उतारू हो जाते हैं।

विद्वान् गेटे आत्म-हत्या करना चाहता था; इसके लिए वह एक बढ़िया-सा चाकू खरीदकर लाया और बहुत दिन तक उसे तकिये के नीचे खुला रखकर सोता रहा, ताकि किसी दिन हिम्मत जुटा सके तो अपना काम तमाम कर ले, पर बहुत दिन बीत जाने

पर भी उससे वैसा बन नहीं पड़ा। अंततः उस चाकू को उसने ऐसे ही फेंक दिया।

वायरन जिन दिनों चाइल्ड हैराल्ड के लेखन में व्यस्त थे, उन दिनों उन पर आत्म-हत्या की सनक बहुत तेज थी, पर उन्हें अपनी सास का दुलार याद आता रहा और वे अपने निर्णय से मुकर गए।

यूनान के महान् दार्शनिक डायोजिनीस अपने हाथों फाँसी लगाकर मरे थे। चीनी साहित्यकार 'लाओत्से' भी अपनी मौत स्वयं बुलाकर लाए थे।

भावुक बुद्धिजीवी अक्सर इस प्रकार के दुस्साहसपूर्ण कार्य कर बैठते हैं। 'मृच्छ कटिकम्' के लेखक शूद्रक आग में जल मरे थे। 'जानकी हरण' महाकाव्य का लेखक, सिंहल का राजा कुमारदास कालिदास की मृत्यु का शोक न सहकर चिता में जल गया था।

लैटिन कवि एंपेदोक्लीज ने ज्वालामुखी में कूदकर आत्मघात किया था। लुकेशियस ने अपनी मृत्यु को अमर बनाने की दृष्टि से यह दुस्साहस किया। महाकवि चैटरटन ने दरिद्रता से पीछा छुड़ाने के लिए विष पीना उपयुक्त समझा। गोर्की ने अपनी सारी पूँजी खर्च करके, पिस्तौल खरीदी और फिर उसी की गोली से अपने पेट को विदीर्ण कर डाला। यहूदी साहित्यकार स्टोफेनज्विग ने अपने अपघात का कारण बताते हुए पुर्जा छोड़ा—"अब संघर्षों से टकराने की मेरी शक्ति चुक गई है। अशक्त जीवन का अंत कर लेना मुझे अधिक अच्छा जँचा।"

चित्रकार लाडत्रे ने अस्पताल की चारपाई पर ही अपने पेट में गोली मार ली। पास की चारपाई पर पड़े मरीज ने हड़बड़ा कर कारण पूछा तो उसने इतना ही उत्तर दिया—"कुछ नहीं, जरा यों ही निशाना आजमा रहा था।" एक दूसरा चित्रकार वानगॉग भी इसी प्रकार अपने ऊपर गोली दाग कर मरा। लोग दौड़कर आए

और "यह सब क्या हुआ ?" पूछा—तो उसने पाइप से धुएँ का आखिरी कश छोड़ते हुए कहा—"जरा चिड़ियों का शिकार कर रहा था।"

आत्म-हत्या का प्रयास करने वाले सदा कृतकार्य ही नहीं हो जाते, बहुत करके वे बच भी जाते हैं। राबर्ट क्लाइव ने अपने जीवन में तीन बार आत्म-हत्या का प्रयास किया, पर पिस्तौल की गोली ठीक निशाने पर लगी ही नहीं।

बुद्धिमान् कहे जाने वालों में से कितने ही मूर्धन्य व्यक्ति ऐसे हुए हैं, जिन्होंने तनिक-सी परेशानी से उद्विग्न होकर आत्म-हत्या कर ली। ऐसे लोगों में सेफो, डेमोस्थनीज ब्रूटस्, केसियस क्लाइव, डेमोक्लीज हनीवाल, बर्टन जैसे लोगों के नाम सर्वविदित हैं।

मनःशास्त्री रॉबिन्स का अध्ययन निष्कर्ष यह होता है कि आत्महत्या की चेष्टा में सफल और असफल लोगों में अधिकांश का मानसिक ढाँचा अवास्तविकताओं से जकड़ा हुआ पाया गया। वे जिंदगी के बारे में असामान्य ढंग से सोचते रहे, समस्याओं का असामान्य मूल्यांकन करते रहे और सर्वविदित सीधे-सीधे निष्कर्षों को अपनाने में असफल रहे। उनकी मानसिक विकृतियों ने ही उनके लिए मकड़ा बनकर ताना-बाना बुना और उस अपने ही जाल में उलझकर वे बेमौत मर गए।

आत्म-हत्या के अनेक तरीके अपनाए जाते रहे हैं। पानी में डूबना, ऊँचे स्थान से नीचे गिरना, विष खाना, फाँसी लगाना और आत्मदाह करना, इन उपायों में अधिक प्रचलित है। एक दुःख को हल्का करने के लिए दूसरा उससे बड़ा दुःख मोल लेना भी एक उपाय सोचा जाता रहा है, यद्यपि वह इच्छित लाभ प्राप्त करने में तनिक भी सहायक नहीं होता। अँकाई इलाज में एक उपचार यह भी था कि किसी के पेट में दर्द हो तो लोहे की सलाख से उसकी छाती दाग दी जाए, इससे जलने का कष्ट इतना होता है कि रोगी पेट के दर्द की बात भूल जाता है। लगभग इसी स्तर का दुस्साहस

यह है कि अमुक चिंता अथवा आपत्ति से छुटकारा पाने के लिए आत्म-हत्या जैसी बड़ी आपत्ति को अपना लिया जाए।

जिस प्रकार शरीर में अनेक प्रकार के विकृत विषाणु प्रवेश करके विविध चिह्न लक्षणों वाले रोग उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार मनःक्षेत्र में कई तरह की विकृतियाँ अपनी जड़ जमा लेती हैं और परिपूर्ण उन्माद न सही उससे मिलते-जुलते उतने ही विघातक भयानक वह मानसिक रोग उत्पन्न करती हैं।

डिमेंशिया प्रिकोक्स अर्थात् किशोरावस्था की हिंसात्मक सनक—डिमेंशिया पैरालिटिका अर्थात् आवेश का सामयिक दौरा—मैलेन्कोलिया अर्थात् विषाद रोग—न्यूरस्थेनिया अर्थात् स्नायुविक असंतुलन जैसी कितनी ही विकृत मनःस्थितियाँ ऐसी हैं, जो विवेक को अस्त-व्यस्त करके रख देती हैं और समयानुसार जितना भी उभार आता है, उसी में मस्तिष्क इतनी तीव्रगति से बहता चला जाता है, जिसमें अपने को सँभाल सकना कठिन हो जाता है।

आवश्यक नहीं कि ऐसे लोगों के लिए उत्तेजना का कोई वास्तविक या बड़ा कारण हो, तभी वे आवेशग्रस्त हों—तनिक-सी मामूली घटना उन्हें उद्विग्न एवं विक्षिप्त बना देने के लिए पर्याप्त होती है। जरा-सी बात पर वे आग बबूले की तरह आवेशग्रस्त हो सकते हैं। क्या करना चाहिए, क्या नहीं ? क्या कहना चाहिए, क्या नहीं ? क्या सोचना चाहिए, क्या नहीं की विवेचना करना, उनसे नहीं बन पड़ता। अंधड़ चक्रवात की तरह जो भी प्रवाह जिस-जिस भी दिशा में चल पड़ा, बस चलता ही चला जाता है। इन उभारों में अक्सर विगठनात्मक, हिंसात्मक, निषेधात्मक, तोड़-फोड़परक होते हैं। सृजन के लिए, समाधान के लिए संतुलन की आवश्यकता होती है, वह जब हाथ में रहा ही नहीं तो फिर उचित-अनुचित का भेद कौन करे ?

जितने लोग आत्मघात से मरते हैं। उससे दस गुने लोग वैसा करने की बात सोचते रहते हैं, पर साहस के अभाव में वैसा कर नहीं पाते। कुछ लोग न तो करते हैं और न करने का उनका इरादा ही होता है। मात्र संबंधियों को डरा-धमकाकर अपना उल्लू सीधा करने के लिए उस तरह की बकवास करते रहते हैं।

फ्रांसीसी समाज विज्ञानी एमाइल दुर्खीम के अनुसार बच्चे कदाचित् ही आत्म-हत्या करते हैं। किशोरों में भी यह स्थिति कम ही पाई जाती है। उम्र के साथ-साथ यह मनोविकार बढ़ता है। प्रणय, परीक्षा, मान-हानि और व्यापार में असफल युवक अक्सर ऐसा दुस्साहस कर बैठते हैं। बूढ़े सबसे ज्यादा आत्मघात करते हैं। वे जिंदगी से ऊबे, थके और निराश होते हैं। अस्तु किसी छोटे कारण से विषादग्रस्त होकर अपनी जान गँवा देते हैं। उन्हें अपने चारों ओर अँधेरा बिखरा दिखायी देता है, जिससे डरकर वे जिस अँधेरे कोने में जा घुसते हैं, उसी का नाम आत्म-हत्या है।

कोई आदमी आत्म-हत्या नहीं करते हैं तो भी वे जिस तरह क्षुब्ध और निराश हुए रहते हैं, वह स्थिति आत्म-हत्या से भी बुरी यंत्रणा देती रहती है। इस स्थिति के दुष्परिणाम, स्वास्थ्य नाश, रोग बीमारी, परेशानी, उद्विग्नता तथा अन्यान्य विकृतियाँ उत्पन्न कर जीवन को बर्बाद कर डालते हैं।

● विक्षोभ के कारण व परिणाम

कई शारीरिक रोग भी मानसिक विक्षोभ के कारण उत्पन्न होते हैं। यों तो विजातीय द्रव्य, विषाणु जलवायु का प्रदूषण, घटिया आहार, ऋतु प्रभाव, असंयम, दुर्घटना जैसे कारण शरीर को रुग्ण बनाने के लिए उत्तरदायी ठहराए जाते रहे हैं। उन्हीं को दूर करने के लिए उपाय सोचे गए हैं तथा उत्पन्न बीमारियों से निपटने के लिए चिकित्सापरक प्रयत्न हुए हैं। स्वास्थ्य समस्या के संदर्भ में एक नया तथ्य सामने यह आया है कि मस्तिष्कीय तनाव आरोग्य

नष्ट करने का सबसे बड़ा कारण है। नवीनतम शोधों ने अपना निष्कर्ष यह प्रस्तुत किया है कि यदि मनःसंस्थान उत्तेजित, आवेशग्रस्त एवं अस्त-व्यस्त रहे तो फिर स्वास्थ्य रक्षा के सारे साधन व्यर्थ हो जाएँगे और अन्य कोई कारण न होने पर भी शरीर के भीतरी अवयव अपना काम ठीक तरह पूरा न कर सकेंगे। फलतः दुर्बलता और रुग्णता अकारण ही बढ़ती चली जायेगी।

सुपाच्य वस्तुओं से पोषण के साधन बनते हैं; पर यदि पाचन तंत्र ही गड़बड़ा जाए, पाचक रसों की मात्रा न्यूनाधिक हो जाए, स्नायु-संस्थान लड़खड़ाने लगे, हारमोन ग्रंथियाँ कुछ का कुछ टपकाने लगें तो यकृत, वृक्क, आँतें, हृदय, फुफ्फुस जैसे महत्त्वपूर्ण अवयव अपनी ड्यूटी ठीक तरह पूरी न कर सकेंगे। फलतः रस, रक्त, मांस, अस्थि का निर्माण घटिया स्तर का होगा, उनमें विषाक्तता घुली रहेगी और स्वास्थ्य संकट उत्पन्न होगा।

शरीर का पूरी तरह नियंत्रण करने वाला एक ही अवयव है—मस्तिष्क। शक्ति का यही स्रोत है। पिछले दिनों हृदय को सर्वोपरि माना जाता था। अब उसकी प्रमुखता अस्वीकार कर दी गई है और प्रमुख के पद पर मस्तिष्क को आसीन कर दिया गया है। अब डॉक्टर लोग हृदय की धड़कन बंद हो जाने पर किसी को मृत घोषित नहीं करते वरन् यह देखते हैं कि मस्तिष्कीय विद्युत् प्रवाह चल रहा है या नहीं। मस्तिष्क जीवित हो तो हृदय की धड़कन को उपचारों के सहारे पुनः गतिशील किया जा सकता है। कितने ही मृतकों के श्मशान से वापस लौट आने एवं कब्र से निकलकर पुनर्जीवित होने के जो समाचार मिलते रहते हैं, उन सबके पीछे एक ही बात पाई गई है कि लोगों ने नाड़ी चलना, हृदय धड़कना, साँस रुकना देखकर मृत्यु मान ली, यह नही जाना जा सका कि मस्तिष्क के किसी कोष्ठक में चेतना तो विद्यमान नहीं है। समाधि लगाने वाले लोग मृतक अथवा अर्धमृतक स्थिति में महीनों पड़े रहते हैं। उस अवधि में हृदय की धड़कन नाम मात्र को रह

जाती है। उतने भर से शरीर यात्रा का चल सकना विस्मयजनक माना जा सकता है, पर प्रत्यक्ष देखा जा सकता है कि मस्तिष्क जीवित रहने की स्थिति में अपने ही संकल्प बल से शरीर को अर्धमृतक बना लेकर, पुनर्जीवित कर देने तक के सारे क्रिया-कलाप संभव हो सकते हैं। इच्छा शक्ति के चमत्कार संकल्पबल के जादू विभिन्न क्षेत्रों में आश्चर्यचकित करने वाले प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। जीवन के उत्थान-पतन में शरीर का अन्य कोई अवयव उतनी बड़ी भूमिका नहीं निभाता जितना कि मस्तिष्क। दीर्घ जीवन से लेकर प्रतिभावान् बनने तक की समस्त विकासोन्मुख प्रक्रियाओं के पीछे मानसिक शक्तियों के ही कौतूहल दृष्टिगोचर होते हैं।

मस्तिष्क ठीक काम करे तो शरीर की विपन्न परिस्थितियों में भी मनुष्य बढ़े-चढ़े काम करता रह सकता है। आद्य शंकराचार्य को लंबे समय तक भगंदर फोड़े से पीड़ित रहना पड़ा, पर वे उसी स्थिति को सहन करते हुए थोड़ी-सी आयु में इतना काम कर सके, जितना कि सौ वर्ष रहने वाले दस मनुष्य मिलकर भी काम नहीं कर सकते। यह मानसिक स्थिरता और प्रखरता का चमत्कार था। जो शरीर की रुग्णता को तुच्छ मानते हुए भी अति महत्त्वपूर्ण कार्य करा सकने में समर्थ हो सका। संसार के इतिहास में ऐसे अगणित उदाहरण विद्यमान हैं, जिनसे स्पष्ट है कि अष्टावक्र, सूरदास जैसे शारीरिक दृष्टि से अक्षम किंतु मानसिक दृष्टि से समर्थ व्यक्तियों ने आश्चर्यजनक पुरुषार्थ प्रस्तुत किये हैं। इसके विपरीत ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है, जो शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ ही नहीं साधनों की दृष्टि से संपन्न होते हुए भी गया-गुजरा, हेय एवं निरर्थक जीवन जीते हुए किसी प्रकार मौत के दिन पूरे कर सके।

उस मस्तिष्कीय विकृति का प्रत्यक्ष चिह्न है—तनाव। देखा जाता है कि कितने ही व्यक्ति बाहर से सामान्य कार्य करते दीखने पर भी भीतर ही भीतर उद्विग्न पाए जाते हैं। खिन्न, उदास, चिंतित,

निराश, भयभीत, कातर, शोकाकुल, रोते, कलपते लोग अक्सर विक्षिप्तों की तरह अस्त-व्यस्त काम करते हैं। लंघन से उठे रोगी की तरह उनकी क्रियाशक्ति अति न्यून होती है। तनिक-सा श्रम करते ही थकान चढ़ दौड़ती है। कई व्यक्ति भीतर ही भीतर आवेशों से ग्रसित पाए जाते हैं। खीज, झूँझलाहट, क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या की आग में जलते हैं और अपने कल्पित शत्रुओं से प्रतिशोध लेने, बर्बाद करने, नीचा दिखाने के कुचक्र रचते रहते हैं। बन पड़ता है तो दूसरे को हानि पहुँचाने वाले आक्रमण या प्रपंच रचते हैं। उतना न बन पड़ा तो आत्म-हत्या, गृहत्याग जैसे आत्मघात पर उतारू होते हैं। यह विक्षिप्त एवं उद्विग्न मनःस्थिति के लक्षण हैं। यों पूर्ण विक्षिप्त तो असामाजिक और व्यवहार की दृष्टि से अव्यवस्थित हो जाते हैं; पर अर्ध-विक्षिप्तों की दशा उनसे कुछ बहुत अच्छी नहीं होती। अक्सर इतना ही होता है कि विक्षिप्तों का अटपटापन देखते ही प्रकट हो जाता है, किंतु उद्विग्नों की उपहासास्पद मनोस्थिति का पता निकट संपर्क में रहने के उपरांत चलता है। वे खाते-बोलते, करते-धरते, सोते-जागते तो सामान्य मनुष्यों की तरह ही हैं, पर आंतरिक खोखलापन ऐसी विचित्र स्थिति में डाले रहता है कि जिस काम में हाथ डालें, उसी में असफलता हाथ लगे। लगातार संपर्क में आने वाले को इस अर्ध-विक्षिप्त स्थिति का आभास मिलता रहता है; पर इतना न्याय वे भी नहीं कर पाते कि मानसिक रोगी मानकर, उनसे सहृदयता एवं उदारता बरतें। होता उलटा है, इस विपन्नता को अवज्ञा, उद्दंडता आदि गिन लिया जाता है और फिर विरोध-विग्रह खड़ा करके, क्षति पहुँचाने का प्रयास होने लगता है। इस प्रकार आंतरिक अशांति बाहर से असफलताओं और दुर्व्यवहारों की दुहरी विपत्ति सिर पर ला पटकती है। फलतः विपन्नता की आग में ईंधन पड़ता जाता है और खीझ घटने की अपेक्षा बढ़ती ही जाती है।

मस्तिष्क पर ज्वर आने, चोट लगने, अपच रहने जैसे कारणों से भी सिर दर्द जैसी स्थिति हो सकती है। कोई आकस्मिक विपत्ति

एवं तिलमिला देने वाली घटना भी मस्तिष्क को उत्तेजित करके तनाव, अनिद्रा, सिर दर्द जैसे कष्ट खड़े कर सकती है। यह सामयिक कारण है, जो आते और चले जाते हैं। यों बारह घंटे बुखार और एक घंटा उद्वेग की क्षति समान मानी गई है। अस्तु सामयिक आवेश-असंतुलन भी कम क्षति नहीं पहुँचाते। उनकी प्रतिक्रिया भी विघातक ही होती है। उथले अधीर व्यक्ति ही छोटे कारणों पर अत्यधिक उत्तेजित होते हैं। गंभीर, धैर्यवान् व्यक्ति बड़ी कठिनाइयों को भी छोटी मानते हैं और उद्विग्न होने के स्थान पर समाधान सोचने में लगते हैं। सार्थक काम सामने होने पर निरर्थक जंजालों से स्वयं ही मन हट जाता है। प्रस्तुत समस्या का हल खोजने की मानसिक संतुलन की अनिवार्य आवश्यकता स्वीकार की जाए तो फिर विषम परिस्थितियों में विशेष रूप से सतर्कता बरतनी पड़ेगी और उस दूरदर्शिता का परिचय देना पड़ेगा, जिसके सहारे विवेकवान् व्यक्ति घोर संकट के समय स्थिर चित्त दिखाई पड़ते हैं।

मस्तिष्क में सीमित तापमान सह सकने की सामर्थ्य है। उद्विग्नता की आग इतनी तीखी होती है कि कपाल के भीतर भरी हुई मज्जा, उसके कढ़ाव में उबलते तेल की तरह खौलने लगती है। इसी असह्य तापमान को मानसिक तनाव के रूप में देखा जा सकता है। तनाव के लक्षण सर्वविदित हैं—सिर भारी रहना, चकराना, जी उचटना, किसी काम में मन न लगना, पदार्थों से रुचि हट जाना, किसी से सघन आत्मीयता की अनुभूति न होना, उदासी छाई रहना, खोपड़ी चटकने, सिर के भीतर की नसें फटने जैसा लगना, नींद अल्प और अधूरी आना, स्वभाव में चिड़चिड़ापन बढ़ जाना। लक्षणों को देखकर जाना जा सकता है कि तनाव की व्यथा ने मनःक्षेत्र को आच्छादित कर लिया। मोटेतौर पर इसे सिर दर्द जैसी स्थानीय व्यथा के समतुल्य माना जा सकता है; पर बात ऐसी है नहीं। तनाव का कारण जटिल है। विकृत चिंतन जब सारे मानसिक संस्थान को आँधी-तूफान की तरह तोड़-मरोड़कर रख देने जितना प्रचंड होता है तो ही उससे तनाव उत्पन्न होता है।

सामान्य स्थिति में तो औंधे-सीधे विचार आते-जाते रहते हैं। उनका प्रभाव न गहरा ही होता है और न स्थायी।

मानसिक तनाव का समूचे शरीर पर प्रभाव पड़ता है और अन्य कारण न होने पर भी मात्र अकेले इसी विग्रह के कारण शरीर के भीतरी और बाहरी अवयव अपनी स्वाभाविक क्रियाशीलता गँवाते चले जाते हैं। घड़ी के पुर्जों की तरह शरीर के अवयवों का पारस्परिक सहयोग एवं तालमेल ही जीवन रथ को अग्रगामी बनाता है। एक पुर्जा गड़बड़ी फैलाने लगे तो सारी मशीन का संतुलन बिगड़ जाता है और बढ़िया घड़ी भी अपना काम ठीक तरह कर सकने में असमर्थ हो जाती है। तनाव यों तो सामान्य रोग दीखता है; पर उसकी जड़ें मस्तिष्क रूपी जीवन संचार केंद्र में घुस जाती हैं, इसलिए वहाँ की विकृति हर कल-पुर्जे को प्रभावित करती है। फलत: चिकित्सक कोई कारण ढूँढ़ नहीं पाते, निदान में कोई प्रत्यक्ष संकट दृष्टिगोचर नहीं होता, फिर भी शरीर गलता ही जाता है, दुर्बलता बढ़ती ही चली जाती है। साथ ही चित्र-विचित्र रोगों की आये दिन फुलझड़ियाँ अपने-अपने कौतूहल दिखाती हुई सामने आती रहती हैं।

● तनाव और उसके कारण

हमारे तनाव तीन तरह के होते हैं—शारीरिक (मस्क्यूलर), मानसिक (मेंटल) और भावनात्मक (इमोशनल)। इन्हें ही आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक ताप कहते हैं।

दीर्घकाल तक लगातार एक ही प्रकार का और अत्यधिक श्रम करने से 'मस्क्यूलर टेंशन' होता है। इसके मुख्य कारण हैं—(१) अनिच्छापूर्वक काम करना (२) मैं परिश्रम कर रहा हूँ (या कर रही हूँ), यह भावना होना। यदि मनुष्य 'श्रम' की यह भावना इस रूप में कि मैंने बहुत श्रम किया, भूल जाए, तो वह तीन घंटे

का विश्राम तथा एक या दो बार भोजन कर लगातार २० घंटे से अधिक काम कर सकता है।

मस्क्यूलर टेंशन—अधिक सोने, दिन चढ़े तक सोते रहने, अधिक खाने और व्यायाम न करने से भी होता है। तामसिक भोजन भी तनाव ले आता है।

'मस्क्यूलर टेंशन' दूर करने का सरल तरीका योगासन है। मनुष्य काम करते-करते जब थक जाता है, तो अँगड़ाई लेता है। लिखते-लिखते हाथ दुःखने लगें, तो हाथ को झटकारता है, विपरीत स्थिति लेता है। एक काम को छोड़कर दूसरा काम करता है—मन बहलाने का प्रयास करता है, पर मनोविनोद के प्रचलित साधनों से वस्तुतः न तो 'मस्क्यूलर टेंशन' दूर होते, न 'मेंटल' और न 'इमोशनल'।

'मेंटल टेंशन्स' बहुत अधिक सोचने से होता है। सोचना सिर्फ वही चाहिए, जिस विषय में सोचना जरूरी हो, परंतु प्रायः सभी मनुष्य काम की बातें बहुत ही कम तथा बेकार ऊल-जलूल या कि जिनसे वर्तमान का संबंध नहीं, ऐसी बातें बहुत अधिक सोचते रहते हैं। पिछली बातों और घटनाओं पर हम बहुत अधिक सोचते हैं। किसी से लड़ाई हो गई, किसी ने गाली दे दी, कोई दुर्घटना हो गई कि बस, सोचना चालू। यह सोचना सर्वथा व्यर्थ होता है। सोचने से मानसिक तनाव पैदा होता है। अत्यधिक मानसिक तनाव बढ़ जाने पर 'मेंटल रिटार्डेशन' (मस्तिष्कीय शक्ति का सुन्न-सा हो जाना) होता है। इन दिनों दुनिया में 'मेंटल रिटार्डेशन' के लाखों मामले प्रकाश में आ रहे हैं। शारीरिक तनाव रात्रि-विश्राम से दूर भी हो जाते हैं, पर मानसिक तनाव तो नींद में भी बने रहते हैं, ट्रैंक्विलाइज़र लेने से वे समाप्त नहीं होते। इनके लगातार बने रहने पर 'डिप्रेशन' आता है। 'डिप्रेशन' को दूर करने के लिए लोग सुरा-सुंदरी की शरण में जाते हैं।

मानसिक तनाव बढ़ जाने पर शिराएँ फटने-सी लगती हैं। आँखें कमजोर हो जाती हैं। कब्ज रहती है। डकारें आती हैं। धूम्रपान की इच्छा होती है, चाय की याद आती है। शारीरिक व मानसिक तनाव मिलकर, काम व क्रोध के आवेश बार-बार पैदा करते हैं।

तीसरा है भावनाओं का तनाव। मनुष्य निरंतर भावनाओं के थपेड़े खाते रहता है। भावनाएँ बहुधा यथार्थ पर आधारित नहीं होती, किंतु मनुष्य उनसे अत्यधिक आसक्ति रखते हैं, उन्हीं से चिपटे रहते हैं। भावनाओं पर चोट लगती है, तो तीखी प्रतिक्रिया होती है, जिनसे रोग पैदा होते हैं। 'इमोशनल टेंशन्स', 'हार्टअटैक' को जन्म देते हैं। किसी का प्रिय मित्र, पुत्र, पति या पत्नी अथवा रिश्तेदार कल आने वाला है तो रात भर उसे नींद नहीं आयेगी। एक घंटे बाद परीक्षाफल घोषित होने वाला है, दिल की धड़कन बहुत बढ़ गई। दूर कहीं प्रवास पर है रात में सहसा घर की याद आ गई है, नींद गायब, यही है भावनात्मक तनाव।

ये भावनात्मक तनाव हमारे अनजाने व्यवहारों में प्रकट होते हैं। कुछ लोग कंधे उचकाते रहते हैं, कुछ पैर हिलाते रहते हैं, कुछ गुनगुनाते रहते हैं, कुछ सीटी बजाते रहते हैं। कोई बार-बार पलकें झपकाते हैं, तो कोई नाक से खूँ-खूँ की आवाज करते हैं। ये सब भावनात्मक तनाव के परिणाम हैं।

तनावों से नाड़ियों में रक्त-प्रवाह अधिक हो जाता है। इससे 'हाईपरटेंशन' पैदा होता है। समय पर तनावों पर नियंत्रण नहीं किया गया या अधिक तनाव के कारण दूर नहीं किए गए तो ब्लडप्रेशर एवं पैरालिसिस हो जाते हैं।

बीमारी कभी 'मस्क्यूलर टेंशन' से होती है; कभी 'मेंटल' और कभी 'इमोशनल' से। कभी तीनों के मिश्रित कारणों से।

थकान से भी क्रोध आता है, चिंता से भी। दिमागी उलझन में फँसे व्यक्ति को सिर दर्द, हृदय पीड़ा, अम्लता, कब्ज आदि

तंग करते रहते हैं। जब व्यक्ति अपने को उपेक्षित समझता है और उसकी भावनाएँ अतृप्त-असंतुष्ट रही आती हैं तो उसे टी० बी०, दमा, आर्थराइटिस, कुष्ठरोग आदि पैदा हो जाते हैं।

तनाव किसी भी क्षेत्र में संव्याप्त क्यों न हो, जीवनी शक्ति का अत्यधिक क्षरण करता है। शारीरिक और मानसिक श्रम से भी थकान आती है, पर वह उथली रहती है और विश्राम करने एवं बलवर्धक आहार-उपचार लेने से इसकी क्षति पूर्ति थोड़े ही समय में हो जाती है किंतु भावनात्मक तनाव ऐसे होते हैं, जिनकी आधार-भित्ति किसी गहरे आघात से संबंधित होती है। ये घाव नासूर बन जाते हैं और समय-समय पर उभरते-फूटते रहते हैं। ईर्ष्या, विद्वेष, प्रतिशोध जैसे मनःस्ताप किसी भी कारण उत्पन्न हुए हों, अचेतन में जमकर बैठ जाते हैं और पुरानी घटनाओं को याद करके अंतःक्षेत्र को उद्वेलित करते रहते हैं। किन्हीं असाधारण महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति में व्यवधान उत्पन्न हो जाने पर भी ऐसा ही होता है। कल्पित सुनहरी स्वप्नों को आघात लगने तक से मनुष्य टूट जाता है, फिर प्रत्यक्ष हानि का तो कहना ही क्या ? प्रियजनों का बिछोह अपमान, घाटा, अपयश आदि के घाव भी गहरे होते हैं और समय के साथ-साथ वे झीने-पुराने भी होते जाते हैं, पर पूर्णतया समाप्त तब तक नहीं होते, जब तक कि उन्हें प्रतिरोध के तीव्र विचारों से प्रयत्नपूर्वक काटा न जाए।

तनावजन्य दुष्परिणामों को जितना विघातक माना जाय, कम है। उसके कारण उस जीवनी शक्ति का भंडार बेतरह समाप्त होता है; जिसके ऊपर शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक संतुलन और आंतरिक आनंद निर्भर रहता है। तेल चुक जाने पर, दीपक को मात्र रुई-बत्ती आदि के सहारे ज्वलंत नहीं रखा जा सकता है। तनाव का सीधा आक्रमण उसी जीवन कोश पर होता है और वह क्षति इतनी तेजी से होती है कि सही ढंग से कुछ सोचने और व्यवस्थापूर्वक कुछ करने की संभावनाएँ अस्त-व्यस्त होती चली

जाती हैं। ऐसी विपन्नता में फँसा हुआ व्यक्ति खोखला बनकर रह जाता है। शरीर की बनावट में भले ही अंतर न आए, पर स्थिति अर्ध-विक्षिप्त जैसी बन जाती है। ऐसे व्यक्ति न केवल स्वयं संतप्त रहते हैं वरन् संपर्क वालों को भी अपने बेतुकेपन पर उद्विग्न किए रहते हैं।

असावधान और दुर्बल मनःस्थिति के व्यक्ति पर छोटे-छोटे कारण भयंकर तनाव उत्पन्न कर सकते हैं। अस्तु कोई प्रतिकूल स्थिति उत्पन्न न होने पाये, यह चाहने की अपेक्षा सोचना यह चाहिए कि हर परिस्थिति में संतुलन बनाए रखने की दूरदर्शिता अपनाई जायेगी और प्रतिकूलताओं के साथ खिलाड़ी की भावना से आँख-मिचौनी खेली जाएगी। ऐसा साहस सँजोकर रखा जाए तो फिर कोई भी कठिनाई ऐसी रह जाती, जो प्रयत्नपूर्वक हल अथवा धैर्यपूर्वक सहन न की जा सकती हो। तीन चौथाई कठिनाइयाँ तो आशंका मात्र होती हैं। भविष्य में अमुक कारण से अथवा अमुक व्यक्ति द्वारा अमुक कठिनाई उत्पन्न की जा सकती है, कोई दैवी विपत्ति आ सकती है या दुर्घटना घटित हो सकती है। ऐसा सोच-सोचकर ही कितने व्यक्ति अधमरे होते रहते हैं, जबकि वस्तुतः वह काल्पनिक कठिनाई कभी भी सामने नहीं आती।

तनाव और विक्षोभ जैसी विकृतियों के दुष्परिणाम भुगतने के बाद भी कई व्यक्ति इन मनोरोगों को स्वयंमेव बुलाते हैं अन्यथा कोई कारण नहीं है कि इतने भयंकर मनोरोगों से बचने का कोई उपाय न किया जाए। वस्तुतः तनावग्रस्त बने रहने और मनःस्थिति को विक्षुब्ध बनाए रखने की आदत बचकाने दृष्टिकोण की प्रतिक्रिया है। यदि जिंदगी को एक मनोरंजक खेल भर माना जाए और उसमें आते रहने वाली अनुकूलता, प्रतिकूलताओं की आँख-मिचौनी को एक खिलवाड़ भर माना जाए तो कोई भी अप्रिय घटना बहुत भारी प्रतीत न होगी और उतार-चढ़ावों को कौतूहल

मात्र अनुभव किया जा सकेगा। इसके विपरीत यदि डरपोक-अधीर प्रकृति होगी, छोटी कठिनाई को बढ़ा-चढ़ाकर सोचेंगे और उसी से भयभीत होकर, पैरों पर कुल्हाड़ी ही नहीं, मस्तिष्क को चूर कर देने वाली हथौड़ी मारेंगे।

बात को बढ़ाकर सोचना ही यदि सुखद लगता हो तो दसों दिशाओं में बिखरे हुए प्राकृतिक-सौंदर्य को, इस संसार की कलात्मक संरचना को, मानव जीवन के साथ जुड़ी हुई अगणित विभूतियों को, समाज की सुव्यवस्थित संरचना को सहयोग एवं सद्भाव के आधार पर मिलने वाले अनुदानों को, अब तक मिली सफलताओं को, उज्ज्वल भविष्य की आशा-संभावनाओं की, विपत्तियों के ग्रहण की अस्थिरता को विचारा जाना चाहिए और उनके चित्र जितने बढ़ा-चढ़ाकर देखे जा सकते हों, देखने चाहिए। हर मनुष्य के सामने कुछ अनुकूलताएँ रहती हैं, कुछ प्रतिकूलताएँ। निश्चय ही उनमें प्रिय अधिक और अप्रिय कम होती हैं। अंधकार से प्रकाश की सत्ता बढ़ी-चढ़ी है। असफलताओं की तुलना में सफलताओं की गणना अधिक है। शत्रुओं से मित्रों की संख्या कई गुनी होती है। अपनी स्थिति लाखों से बुरी है तो करोड़ों से अच्छी है। यदि इस प्रकार सोचा जा सके तो मस्तिष्क को उत्तेजित करके कष्टकारक तनाव की स्थिति से सहज ही छुटकारा पाया जा सकता है। यदि परिष्कृत दृष्टिकोण विकसित किया जा सके तो तथाकथित प्रतिकूलताएँ उपेक्षणीय लगें और उनका खट्टा-मीठा स्वाद लेते हुए संतुलन को यथावत् बनाए रखा जा सके।

तनाव दूर होने का एक उपाय तो यह है कि मनोवांछित परिस्थितियाँ बनी रहें। कल्पवृक्ष आँगन में लगा हो और जो चाहा जाए वही तत्काल उपस्थित होता रहे। संसार के सभी प्राणी अपने वशवर्ती और अनुचर रहें। स्वर्ग जैसे किसी तथाकथित लोक में निवास रहे और सर्वत्र अनुकूलता पाई जाए। यदि यह

दिवास्वप्न संभव न दीखता हो और विश्व रचना में अँधेरे-उजाले का पेंडुलम हिलना कटु सत्य समझ में आता हो तो फिर एक ही उपाय है कि हम प्रतिकूलताओं से डरें नहीं वरन् उन्हें विनोद के लिए आवश्यक उतार-चढ़ाव स्वीकार कर लें। ताल-मेल बिठाकर चलने वाली समझौतावादी नीति ही व्यावहारिक है। प्रतिकूलताएँ भी अनुकूलताओं की तरह श्वास-प्रश्वास क्रम की तरह बनी ही रहने वाली हैं। यदि यह मान लिया जाए तो जूझना, सहना और हँसना इन तीनों की समन्वित रीति-नीति अपनानी पड़ेगी।

तनाव परिस्थितिवश भी हो सकता है; पर उस स्थिति में वह अस्थायी रहता है और समय प्रवाह में वह बहता हुआ अन्यत्र चला जाता है। दृष्टिकोण की विकृति ही चिरस्थायी तनाव उत्पन्न करती है और उसी से जीवन का वरदान एक अभिशाप के रूप में परिणत होता है। अध्यात्म तत्त्व-दर्शन यदि हृदयंगम किया जा सके तो न केवल तनाव जैसी व्यथा से वरन् अन्यान्य आपदाओं से बचते हुए संतोष, आनंद एवं उल्लास के साथ अभावग्रस्त विपन्न समझा जाने वाला कुसमय, सुखद सौभाग्य में सहज ही परिणत हो सकता है।

❑ ❑

शरीर ही नहीं, मन को भी स्वस्थ रखिए

❖

शारीरिक स्वास्थ्य की आवश्यकता समझी जा रही है, उसके लिए उपयोगी आहार-विहार अपनाने की चर्चा भी जोरों पर है। इस प्रयोजन के लिए बलवर्धक और निवारक औषधियों का अनुसंधान एवं निर्माण भी तेजी से चल रहा है। यह प्रसन्नता की बात है। अस्पतालों से शारीरिक रोग-निवारण में सहायता मिलती है। सर्जरी के विकास ने अत्यंत विपन्न स्थिति में पड़े हुए लोगों की प्राण रक्षा कर सकना संभव बना दिया है। शरीर रक्षा के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा, संतुलित आहार, उपयोगी व्यायाम, चिकित्सा उपचार की दृष्टि से जो हो रहा है, उससे प्रतीत होता है कि आरोग्य का महत्त्व समझा जा रहा है और उसके लिए सही-गलत कुछ न कुछ प्रयत्न भी किया जा रहा है। प्रयत्नशील को आज नहीं तो कल सही दिशा भी मिलेगी और उत्साहपूर्ण प्रयास देर-सबेर में अभीष्ट लक्ष्य को बहुत हद तक प्राप्त कर भी लेंगे, ऐसी आशा की जा सकती है।

दुःख इस बात का है कि शरीर से भी उपयोगी मन के आरोग्य की आवश्यकता नहीं समझी जा रही और उसके लिए कुछ कहने लायक प्रयत्न नहीं किया जा रहा। शरीर की दुर्बलता, रुग्णता एवं अकाल मृत्यु का प्रधान कारण मानसिक विकृतियाँ होती हैं। उन्हीं से प्रेरित होकर मनुष्य विकृत गतिविधियाँ अपनाता है और शरीर का अपघात करता है। असंयम बरतने के लिए विकृत मन को ही कुकल्पनाएँ—विकृत अभिरुचियाँ प्रेरणाएँ देती हैं और शरीर को विवश होकर वैसा करना पड़ता है, जिससे आरोग्य का विनाश सामने आ खड़ा हो। असंयम, कुरुचिपूर्ण आहार-विहार अपनाने के लिए शरीर नहीं, मन ही उछल-कूद मचाता है और उसका दंड मात्र आज्ञा पालन करके शरीर को उठाना पड़ता है।

स्वास्थ्य पर जितना असर विचारों का पड़ता है, उतना और किसी प्रक्रिया का नहीं। अन्न, जल, वायु की शुद्धि एक ओर मन की

अशुद्धि दूसरी ओर रखी जाए तो प्रतीत होगा कि विकृत मन समस्त शरीर-संवर्धन की उपयुक्तताओं को धूल में मिलाकर काया की आधि-व्याधियों के गर्त में धकेल सकता है। धनी और साधन संपन्न लोग निर्धनों की अपेक्षा अधिक रुग्ण पाए जाते हैं। इसका एक मात्र कारण यही है कि उनकी मानसिक अव्यवस्था ने शरीर-पोषण के बढ़े-चढ़े साधनों की उपयोगिता झुठलाकर रख दी है। इसके विपरीत वनवासी, आदिवासी प्रकृति से घोर संघर्ष करते हुए कष्टसाध्य और अभावग्रस्त जीवन जीते हुए भी जब निरोग, परिपुष्ट और दीर्घजीवी देखे जाते हैं, उसका विवेचन इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि मानसिक संतुलन बनाए रहने वाले—शरीर-पोषण की सुविधा न होने पर भी बलिष्ठ रह सकते हैं। समग्र स्वास्थ्य रक्षा में जितना योगदान शरीर संबंधी सुव्यवस्थाओं का है, उससे हजार गुना प्रभाव मनःस्थिति का होता है। मनुष्य के सुख-दुःख बहुत करके, स्वास्थ्य एवं धन-वैभव पर टिके हुए नहीं होते वरन् उनकी नींव दृष्टिकोण एवं विचार-संस्थान के ऊपर रखी होती है। वैभववान् नहीं, विचारवान् ही सुखी हो सकते हैं। विचार विकृति से बढ़कर और कोई शत्रु नहीं। इस शत्रु की पटकें इतनी भयावह होती हैं कि व्यक्तित्व को बुरी तरह तोड़-मरोड़कर रख देती हैं और मनुष्य मनोविकारों की उलझनों से जकड़ा हुआ नारकीय आग में हर घड़ी जलता रहता है।

शरीर दीखता है—मन दीखता नहीं। इसलिए लोग शरीर के लिए बहुत दौड़-धूप करते हैं। समय, ध्यान और धन लगाते हैं। मन दीखता नहीं, इसलिए उसे सँभालने, सुधारने की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। कुसंस्कारी मन, रुग्ण शरीर की अपेक्षा अधिक कष्टकारक है, इस तथ्य को लगता है—एक प्रकार से भुला ही दिया गया है। यदि ऐसा न होता तो जनमानस के परिष्कार पर भी ध्यान दिया जाता और आरोग्य रक्षा के जितने प्रयत्न हो रहे हैं, उसकी तुलना में उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए मानसिक समस्वरता स्थापित करने के लिए हजार गुने प्रयत्न होते दिखाई

पड़ते। पर वैसा कुछ हो नहीं रहा है, उसे देखते हुए लगता है, स्वास्थ्य रक्षा के एक पक्षीय प्रयत्नों में लगा हुआ मनुष्य उसके दूसरे पक्ष को भूल बैठा है और आधि-व्याधि की अनेकानेक यातनाएँ सह रहा है।

मनःशास्त्री राबर्ट एस० डी० रोप के अनुसार सुविकसित कहे जाने वाले देशों में क्षय, हृदय रोग, अनिद्रा, मधुमेह और कैंसर इन पाँच रोगों की बाढ़ आ रही है। इनसे आक्रांत रोगियों से अस्पताल भरे पड़े हैं और निजी डॉक्टरों को अहर्निशि व्यस्त रहना पड़ रहा है। यह प्रकट पक्ष, अप्रकट पक्ष मानसिक रोगियों का है। शरीर रोगियों की सम्मिलित संख्या की अपेक्षा मानसिक रोगियों की संख्या कई गुनी अधिक है। मानसिक अस्पतालों का जितना प्रबंध हो सका है, उसकी तुलना में अभी हजारों गुने अस्पतालों की जरूरत पड़ेगी, ताकि विक्षिप्त और अर्ध-विक्षिप्तों को चिकित्सा का आश्रय मिल सके। ऐसे लोग जो वस्तुतः मानसिक रोगी हैं, अपनी आजीविका किसी प्रकार चलाते रहते हैं—उनके बारे में कोई ध्यान भी नहीं दिया जाता। इस सबकी गणना की जा सके और उसके द्वारा होने वाली वैयक्तिक एवं सामाजिक क्षति का अनुमान लगाया जा सके तो प्रतीत होगा कि मानवी प्रगति और सुख-शांति में सबसे बड़ा व्यवधान मानसिक विकृतियों ने ही उत्पन्न किया है। दुःख इस बात का है कि संसार की इतनी अहम् समस्या को उपेक्षा के गर्त में डाल दिया गया है और तुलनात्मक दृष्टि से कहीं अधिक कम महत्त्व की समस्या—शारीरिक स्वास्थ्य को, अधिक महत्त्व मिल गया है।

अकेले अमेरिका में ६५ लाख मनुष्य मस्तिष्क संबंधी रोगों से ग्रसित कूते गये हैं। उनमें से अस्पतालों में नियमित उपचार तीन लाख ही करा पाते हैं। शेष या तो इधर-उधर भटकते हैं या फिर अपनी स्थिति की वास्तविकता न समझकर साथियों पर दोषारोपण

करते हुए बकझक करते, मरते-मारते, रोते-कलपते, आवेश-उद्वेगों से संतप्त रहते दिन काटते हैं।

ऐसे लोग या तो झगड़ालू, विद्वेषी बन जाते हैं या फिर दुःखी, चिंतित, भयभीत देखे जाते हैं। साधारण मनुष्यों की तरह उन्हें शांत-संतुलित कदाचित् ही कभी देखा जायेगा। उन्हें हलकी-फुलकी, संतोष, संतुलन एवं प्रसन्नता की स्थिति में कभी-कभी ही देखा जा सकता है, अन्यथा वे स्वयं उद्विग्न, संतप्त बने हुए आक्रोश ग्रसित ही बने रहते हैं। अपनी तनिक-सी कठिनाइयों को पहाड़ जैसी बताकर—जिस-तिस से सहानुभूति की याचना करने की भूमिका बनाते हुए देखा जा सकता है। उनकी झूठमूठ की बातें ऐसे लोगों के साथ होती हैं, जो उनकी सहायता कुछ भी नहीं कर सकते हैं। उपयोगी-अनुपयोगी का, अपने-पराए का, वे ठीक से वर्गीकरण नहीं कर पाते। निरर्थक लोगों से मित्रता जोड़ने और मित्रों से नाता तोड़ने की हरकतें करते हुए देखा जा सकता है। वस्तुतः उनकी निर्णयात्मक अक्षमता उन्हें इस स्थिति में छोड़ती ही नहीं कि किसी सही निष्कर्ष पर पहुँच सकें। देखने में अच्छे खासे लगते हुए—उद्योग-आजीविका चलाते हुए उनकी आंतरिक स्थिति बहुत ही दयनीय होती है। न चैन से बैठते हैं, न साथियों को चैन से बैठने देते हैं। रूठते, रोते या रोष-आक्रोश से ग्रस्त उनकी विचित्र मुद्राएँ घर के लोगों को भयभीत किये रहती हैं। न जाने कब क्या 'मूड' उठ खड़ा हो और क्या से क्या सोचने लगे, उस आशंका से घर के लोग चिंतित और हैरान बने रहते हैं। मित्र तो उनका कोई होता नहीं। जिन्हें वे मित्र समझते हैं, वे भी उस 'बवाल' से बचने के लिए कन्नी काटते हैं।

यह कुछ लक्षण कुछ स्थितियों के हैं। इससे न्यूनाधिक-अपने-अपने ढंग की विचित्रताएँ और विलक्षणताएँ मानसिक रोगियों में पाई जाती हैं। कम समय के लिए संपर्क में आने वालों को भी कुछ पता नहीं चलता। आफत उन पर छाई

रहती है, जो निकट संपर्क में रहते हैं। वे दया के पात्र बनकर ही जी पाते हैं। उपेक्षापूर्वक किसी सराय में दिन काटते उन्हें देखा जा सकता है। उद्विग्नता से उनका शारीरिक स्वास्थ्य जर्जर बन जाता है और पैसे का सही उपयोग न कर पाने के कारण दरिद्रता ग्रसित भी रहते हैं। मित्रों का अभाव, निदंकों का बाहुल्य उन्हें खीज से कभी उबरने ही नहीं देता।

यह रोग तेजी से बढ़ रहा है। अमेरिका में इनका पूर्ण प्रकोप है। योरोप के धनी देशों की जनता पर भी इस व्यथा के पंजे कसते जा रहे हैं। यह तथ्य इसलिए प्रकट होता है कि वहाँ इन बातों की खोज-बीन की जाती रहती है। संभवतः पिछड़े देशों की स्थिति और भी अधिक दयनीय होगी, क्योंकि वहाँ की आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियाँ अपेक्षाकृत अधिक असुविधाजनक हैं और उनसे उत्तेजना पाकंर, दुर्बल मनःसंस्थान अधिक विकृत हो सकता है। अपराधों की वृद्धि में द्वेष अथवा लोभ प्रधान कारण नहीं होता। अधिकतर विक्षिप्तताग्रस्त व्यक्ति ही अपराधी बनते हैं। आवेशग्रस्त स्थिति उन्हें उच्छृखंलता अपनाने और कुकृत्य करने के लिए प्रोत्साहित करती है। उसके साथ लालच की कल्पना जुड़ जाने से मन और भी अधिक पक्का हो जाता है।

कुछ समय पूर्व चिंताजनक स्थिति तक पहुँचे हुए मानसिक रोगियों के रक्त में से शक्कर की कमी करके, मस्तिष्क को सुस्त बनाया जाता था और उसके लिए 'इन्सुलीन कोमा' का प्रयोग होता था। अब उसका स्थान सुधरे हुए 'इलेक्ट्रो कन्वल्सिव' उपचार ने ले लिया है। घिसी-पिटी दवाएँ-केसर पाइन, क्लरोरी प्रोमाजाइन'-मेट्राजोल-कॉर्डियाजोल ही अभी तक चल रही हैं। इनसे एक प्रकार की तंद्रा आती है और ढर्रे की आदत का घूमता हुआ चक्र तोड़ने में सहायता मिलती हैं। इससे तात्कालिक सहायता के रूप में हलकापन तो दृष्टिगोचर होता है, पर जड़ कटने वाली कारगर सफलता दृष्टिगोचर नहीं होती है।

मनःशास्त्र क्षेत्र में आज के मूर्धन्य विज्ञानी डॉ० विलियम रेले का कथन है—मानसिक रोगों के तात्कालिक उपचार खोजने के साथ-साथ यह भी देखा जाना चाहिए कि यह विक्षिप्तता की बाढ़ किन कारणों से आ रही है। उन कारणों पर गहराई से विचार करने पर यह तथ्य सामने आते हैं कि आज की सामाजिक परिस्थिति और वैयक्तिक मनःस्थिति में विकृतियों का इतना अधिक समावेश हो गया है कि शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक संतुलन स्थिर रह नहीं सकता। चिकित्सकों की उपचार पद्धति इसके लिए पर्याप्त नहीं। आवश्यकता इस बात की भी है कि समाज व्यवस्था और व्यक्ति की चरित्र निष्ठा में ऐसे सुधार किये जाएँ, जिनमें शांतिपूर्ण और हँसी-खुशी का जीवनयापन संभव हो सके। मानसिक रोगों से आत्यंतिक मुक्ति उस स्थिति में ही संभव बनाई जा सकती है।

● शरीर व मन के साथ अनीति न बरतें

सोचने का तरीका विकृत हो जाने पर सामान्य परिस्थितियाँ भी प्रतिकूल दिखाई पड़ती हैं और उनसे डरा, घबराया हुआ व्यक्ति अपना संतुलन गँवा बैठता है। झाड़ी का भूत बन जाना, रस्सी का सर्प दिखाई पड़ना, भ्रम की प्रतिक्रिया को प्रत्यक्ष कर देता है। प्रतिकूलताएँ वस्तुतः उतनी होती नहीं जितनी कि समझी जाती हैं। मनुष्य हर स्थिति में गुजारा कर सकने योग्य शरीर और हर परिस्थिति में मुस्कराते रह सकने योग्य मन लेकर जन्मा है। इनकी मूल संरचना में कोई दोष नहीं है। शरीर 'व्याधि' से और मन 'आधि' से यदि ग्रसित होता है तो उन विपत्तियों का कारण अपनी ही भूल होती है। असंयम हमें रुग्ण बनाता है और असंतुलन से हम अर्ध-विक्षिप्त दिखाई पड़ते हैं।

शरीर के साथ अनीति बरती जाए तो वह देर-सबेर में रुग्ण होकर रहेगा। कमजोरी और बीमारी उसे घर दबोचेगी और रोती, कराहती स्थिति में घसीट ले जायेगी। मस्तिष्क के साथ यदि

अनीति बरती गई है, उसे कुसंस्कारी चिंतन का अभ्यासी बनाया गया है, तो या तो कठिनाई पैदा कर लेगा या फिर सामान्य स्थिति में ही विपरीतता का आरोपण करके विक्षुब्ध रहने लगेगा। इस विक्षुब्धता को ही मानसिक रुग्णता कहा जाता है।

इन दिनों शारीरिक रोग भी बेतरह बढ़ रहे हैं। नई-नई किस्म के, नई-नई आकृति-प्रकृति के रोग हर साल उठ खड़े होते हैं और डॉक्टर उनका अता-पता चलाने एवं उपचार खोजने में नित नई परेशानी अनुभव करते हैं। पुराने-जमाने के परिचित रोगों की भी अब इतनी अधिक शाखा-प्रशाखाएँ फूट पड़ी हैं कि उन्हें नये रोग की संज्ञा देने में भी कोई आपत्ति नहीं होनी होती। मानसिक रोगों की बढ़ोत्तरी इससे भी अधिक तेज और भयंकर है। जिस तरह पूर्ण स्वस्थ कहे जा सकने योग्य शरीर ढूँढ़ने में कठिनाई से ही मिलेंगे, उसी तरह ऐसे मनुष्य कदाचित् ही मिलेंगे, जिनका मस्तिष्क मानसिक रोगों के कारण विकृत, जर्जर बना हुआ न हो। आज की बढ़ी हुई अनैतिकता एवं असामाजिकता ऐसी समस्याएँ उत्पन्न करती हैं, जिससे सामान्य मनोबल का व्यक्ति सहज ही विक्षिप्त हो उठता है। घटा, गिरा मनोबल भी इतना अपंग हो चला है कि सीधे-साधे, सरल, स्वाभाविक मनुष्य जीवन के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई अनुकूलता, प्रतिकूलताओं को विपत्ति मान बैठता है और रो-धोकर जमीन-आसमान को सिर पर उठा लेता है। कभी सचमुच ही ऐसी घटनाएँ घटित होती हैं, जिन्हें असाधारण या अप्रत्याशित कहा जा सके। शौर्य-साहस के सहारे इनका सामना किया जा सकता है। जूझने से हर विपत्ति हलकी पड़ती है। यदि कुछ विपत्ति आ ही जाए तो उसे संतुलन बनाये रखकर सहा जा सकता है। संकट को हलका मानने से वह बहुत कुछ हलका पड़ जाता है और यदि असह्य मान लिया जाता है तो उसका वजन पर्वत से भारी हो जाता है। सामान्य बुद्धि के लोग परिस्थितियों को ही सुख-दुःख का कारण मानते हैं और यह भूल जाते हैं कि मान्यताओं की जादुई शक्ति कितनी अद्‌भुत है ? मामूली-सी बात

असह्य संकट के रूप में दीखना और सचमुच ही किसी बड़ी विपत्ति का आक्रमण मामूली सी विपरीतता भर लगना अपने चिंतन की ही दो चमत्कारी दिशाएँ हैं। इनमें से किसी को भी अपनाया जा सकता है और संतुलन को बनाए रह सकना या गँवा बैठना संभव हो सकता है।

परिस्थितियों के साथ चिंतन का उपयुक्त तालमेल न बिठा सकने के कारण अब असंख्य व्यक्ति मानसिक रोगों से ग्रसित होते चले आ रहे हैं। यह अवांछनीयता महामारी की तरह, आँधी-तूफान की तरह बढ़ रही है और लगता है कि स्वस्थ और संतुलित मस्तिष्क वाले व्यक्ति अगले दिनों ढूँढ़ पाना कठिन हो जायेगा।

शरीर की तुलना में मन का मूल्य हजारों गुना अधिक है। उसी प्रकार शरीर-रोगों की तुलना में मानसिक रोगों की क्षति अत्यधिक है। शरीर रोगी रहे किंतु मस्तिष्क स्वस्थ हो तो मनुष्य अनेकों मानसिक पुरुषार्थ कर सकता है, किंतु यदि मस्तिष्क विकृत हो जाय तो शरीर के पूर्ण स्वस्थ होने पर भी सब कुछ निरर्थक बन जायेगा।

इन दिनों मानसिक रोगों की बाढ़ जिस तूफानी गति से आ रही है—दावानल की तरह बढ़ती, धधकती चली जा रही है, उसे देखते हुए लगता है कि मनुष्य जीवन से उसका सहज सुलभ आनंद छिनने ही जा रहा है। यह स्थिति अत्यंत चिंताजनक है। सनकी, वहमी, शेखचिल्ली, उद्विग्न, क्रुद्ध, रुष्ट, आशंकाग्रस्त, चिंतित, निराश, भयभीत, उदासीन व्यक्ति क्रमशः अपने लिए भार बनते चले जाते हैं। उनके मस्तिष्क में ऐसे 'चक्रवात' उठते रहते हैं, जो सोचने की स्वस्थ शैली को बेतरह तोड़-मरोड़कर रख देते हैं। टूटी हुई मनःस्थिति में तथ्य को समझना संभव नहीं रहता। कुछ के बदले कुछ समझ सकना और कुछ करने के स्थान पर कुछ करने लगना ऐसी स्थिति-विपत्ति है, जिसके कारण मनुष्य अर्धविक्षिप्त

स्थिति में चला जाता है। अपने आपके लिए तथा दूसरों के लिए एक समस्या बन जाता है।

बढ़ते हुए मनोरोगों से क्रमशः सारा मनुष्य समाज जकड़ता चला जा रहा है। संतोष इतना ही है कि यह विपत्ति पूर्ण उन्माद की स्थिति तक नहीं पहुँची है। मस्तिष्क के छोटे-छोटे हिस्सों पर ही उसने आधिपत्य जमाया है और लोग अर्ध-विक्षिप्त जैसे ही दिखाई पड़ते हैं। जो सही नहीं सोच सकता, सही निष्कर्ष नहीं निकाल सकता और साधनों का उपयोग करने एवं परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाने में समर्थ नहीं है, उसे मानसिक दृष्टि से रोगी ही कहा जायेगा। ऐसे व्यक्ति दर्द से कराहते भले ही न हों, पर उनकी जीवन संपदा एक प्रकार से कूड़ा-करकट ही बन जाती है। न वे स्वयं चैन से रहते हैं और न साथियों को चैन से रहने देते हैं। इन दिनों कुछ मानसिक रोगों की तो भरमार ही हो चली है।

मनुष्य की अनेकानेक मनोवृत्तियों का विवेचन, विश्लेषण और वर्गीकरण करते हुए मनःशास्त्री प्रो० शेल्डि के अनुसार उनकी मूलतः दो धाराएँ बताई हैं—एक प्रिय दूसरी अप्रिय। एक सुख दूसरी दुःख। इन दोनों का परिस्थितियों से कम और मान्यताओं से अधिक संबंध होता। कौन व्यक्ति, किस स्थिति में दुःख और किसमें सुख अनुभव करता है, यह उसका अपना इच्छित विषय है। एक व्यक्ति जिस स्थिति में दुःखी रहता और उससे अच्छी स्थिति न मिलने के कारण असंतोष व्यक्त करता है, उसी में दूसरे लोग बहुत प्रसन्न रहते हैं। इतना ही नहीं, कितने ही व्यक्ति उसे प्राप्त करके आनंद विभोर हो सकते हैं, जिसमें कि असंतुष्ट व्यक्ति अपने को दुःखी अनुभव कर रहा है।

ज्वर, दर्द आदि कष्ट और भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी जैसे अभाव प्रायः सभी को दुःख देते हैं, पर इन दुःखों में भी भयंकर विपत्ति अथवा सामयिक समस्या की छोटी-सी झलक मान लेने पर उनका कष्ट हलका और भारी हो सकता है। इस प्रकार की कठिनाइयाँ

थोड़ी ही होती हैं। वस्तुतः अधिकांश सुख और दुःख काल्पनिक होते हैं। वे मान्यताओं और इच्छाओं से संबंध रखते हैं। सोचने का तरीका बदला जा सकता है और दुःख-सुख की, प्रसन्नता-अप्रसन्नता की, संतोष-असंतोष की स्थिति में आमूल-चूल नहीं तो अत्यधिक परिवर्तन अवश्य ही किया जा सकता है।

एडवर्ड कारपेंटर का कथन है—'दुःख की मान्यता वस्तुतः मन की पराधीनता प्रकट करती है।' मन की स्वाधीनता मिलने पर वह सहज ही समाप्त हो जाती है, बाहरी व्यक्ति या बाहरी पदार्थ हमें बहुत ही कम सहायता कर सकते हैं या सुख दे सकते हैं। उनके योगदान का न्यून या अधिक मूल्यांकन करके ही हम प्रसन्नता, अप्रसन्नता अनुभव करते हैं। अनुभूति की प्रक्रिया में परिवर्तन कर लिया जाये, अपने सद्‌गुणों और सप्रयत्नों को ही सफलता मान लिया जाय और उतने ही क्षेत्र में प्रसन्नता को केंद्रित कर लिया जाय तो प्रायः हर स्थिति में प्रसन्न एवं संतुष्ट रहने का अवसर मिल सकता है। मन की स्वाधीनता का यही प्रतिफल है। व्यक्तियों, वस्तुओं या पदार्थों पर अपनी प्रसन्नता को निर्भर बना देना मानसिक पराधीनता है। उस स्थिति में कोई न तो सुखी रह सकता है और न संतुष्ट।

दार्शनिक स्पिनोजा भी यही कहा करते थे। उन्होंने अपने दर्शन में इसे मौलिक सत्य माना है कि विक्षुब्ध मनःस्थिति, मानसिक पराधीनता की ही अवस्था है। स्वावलंबन की स्थिति में कोई उद्वेग ठहर ही नहीं सकता।

हमें किन-किन वस्तुओं का अभाव है, किन-किन व्यक्तियों ने कब-कब, क्या-क्या दुर्व्यवहार किया, अब तक कितनी बार असफलताएँ मिलीं और हानियाँ उठानी पड़ीं, इसका लेख-जोखा लेते रहा जाय तो कोई भी मनुष्य अपने आपको दुःख-दुर्भाग्य से ग्रसित अनुभव करेगा, किंतु यदि वही अपने उपलब्ध साधनों की बहुलता, दूसरों के सहयोग-सद्‌भाव एवं समय-समय पर मिली

सफलताओं की लिस्ट तैयार करने लगे तो प्रतीत होगा कि वह जन्मजात वरदान लेकर सुख और सफलताओं के लिए ही पैदा हुआ है। चिंतन की विकृति का नाम ही दुःख है, इस कथन में कोई अत्युक्ति नहीं है।

वियना के पोलोक्लिनिक अस्पताल में मानसिक चिकित्सा के विशेषज्ञ डॉ० विक्टर ई० फ्रेंकल ने अपने ५० वर्षों के चिकित्सा अनुभवों का सार बताते हुए लिखा है—"जो मनुष्य यह अनुभव करेगा कि उसका जीवन निरर्थक है, उसका मन और शरीर कभी स्वस्थ न रहेगा। सार्थकता की अनुभूति न होने पर मनुष्य जिंदगी को लाश की तरह ढोता है और उस नीरस निरानंद स्थिति में सचमुच ही जीवन बहुत भारी पड़ता है। उस दबाव से इतनी थकान आती है कि कुछ करते-धरते नहीं बनता। हारा-थका आदमी धीरे-धीरे गिरता, घुलता जाता है और मरण को निकट बुलाने वाली बीमारियों को निमंत्रण देकर स्वेच्छा संकल्प के आधार पर कष्ट ग्रसित रहने लगता है।"

स्काटलैंड के मनोरोग चिकित्सक डॉ० रोनाल्ड डैकिटलेंज ने मनुष्य के मानसिक रोगग्रसित होने के कारण और उनके निवारण के उपाय बताने के संदर्भ में दो बड़े ग्रंथ लिखे हैं—(१) दि पॉलिटिक्स ऑफ एक्सपिरियन्स और (२) 'दि पॉलिटिक्स ऑफ फेमिली' इन दोनों में उसने समाज की वर्तमान परिस्थितियों की भर्त्सना करते हुए कहा—"इनमें जकड़े रहने पर मनुष्य को मानसिक रोगों का शिकार होते रहना पड़ेगा और सहज स्वाभाविक रीति से व्यक्तित्व का विकास कर सकना उसके लिए संभव न होगा। सामान्य व्यवहार में वे कूटनीतिक चालबाजी की दुर्गंध देखते हैं और कहते हैं, मनुष्य को दबा, सता कर बाधित नहीं किया जाना चाहिए, उसे प्रत्येक क्षेत्र में अपने विवेक को विकसित करने का अवसर मिलना चाहिए।"

समर्थ वर्ग को अधिक सुविधा देने वाली और असमर्थ वर्ग को यथास्थान बने रहने की नीति ने वर्तमान कानूनों एवं परंपराओं का सृजन किया है। इस असंतुलन ने एक पक्ष को उद्धत और दूसरे को भौतिक दृष्टि से दीन और आत्मिक दृष्टि से हीन बनाया है। अस्तु दोनों ही पक्षों में अपने-अपने ढंग के मानसिक रोग उत्पन्न हुए हैं। यदि हर किसी को लगभग समान अवसर मिले होते और अनावश्यक बंधन न जकड़े गये होते तो लोग मानसिक दृष्टि से प्रसन्नता एवं संतोष अनुभव करते। तद्नुसार वे शारीरिक दृष्टि से भी स्वस्थ रहते और आर्थिक, पारिवारिक और सामाजिक स्थिति में भी सुसंपन्नता दृष्टिगोचर होती।

अत्यधिक हताश व्यक्ति कभी एक तरह की, कभी दूसरे तरह की गड़बड़ियाँ करते रहते हैं। इन हरकतों को प्रेरणा देने वाली मनोवृत्ति को, 'एजीटेटेड डिप्रेसिव साइकोसिस' कहा जाता है। न्यूरोटिक डिप्रेशन अथवा साइकोटिक डिप्रेशन' उस स्थिति का नाम है, जिसमें निराशा छाई रहती है, चित्त उदास और खिन्न रहता है। कुछ नया सोचने या नया करने को जी नहीं करता। चुपचाप बैठे या पड़े रहना, एक ही सीमित विचार में निमग्न रहना इन रोगियों को पसंद होता है। ये न कुछ चाहते, न कुछ कहते हैं, न करते हैं। किसी प्रकार दिन काटते रहना ही उनके लिए पर्याप्त है।

मेनिक डिप्रेशन और एंडोजेनिक डिप्रेशन की स्थिति में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं; कभी उत्तेजना, कभी निष्क्रियता। कुछ दिन या कुछ समय वे सक्रिय दीखते हैं, किंतु फिर ऐसा कुछ हो जाता है कि जो किया था या सोचा था, उसे जहाँ का तहाँ छोड़कर फिर ठप्प हो जाते हैं। हताश, एजीटेटेड डिप्रेशन, ग्रसित रोगियों की स्थिति एक जैसी नहीं रहती। उनकी चित्र-विचित्र हरकतें अदलती-बदलती रहती हैं, कभी मूड एक तरह का होता है, तो कभी दूसरी तरह का।

बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँधने वाले, किंतु परिस्थितिवश वैसे बन न सकने वाले लोग यदि अधीर और भावुक प्रकृति के हैं तो उन पर उस असंतोष का गहरा असर पड़ता है। उन्हें अमुक व्यक्तियों या अमुक परिस्थितियों से बहुत शिकायत होती है, जिनके कारण वे अपना खेल बिगड़ा मानते हैं। कभी-कभी तो अपने भाग्य या प्रयत्न को भी वे दोष देते हैं, पर अधिकतर उनकी खीज दूसरों पर रहती है। वे सोचते हैं कि उनके प्रयत्न पर्याप्त थे, उनकी योग्यता कम नहीं थी, किंतु दूसरों ने उन्हें गिरा या हरा दिया। इन दूसरों की पंक्ति बहुत लंबी होती है, इसमें ग्रह, नक्षत्र, भाग्य विधान से लेकर दोस्त-दुश्मन परिचित-अपरिचित सभी आ सकते हैं। वे किसी को भी, किन्हीं को भी, उस असफलता का कारण मान सकते हैं। यह मान्यता आरंभ में खीज, झुँझलाहट, द्वेष, क्रोध आदि के रूप में प्रकट होती है, पर इससे भी जब कुछ बनता नहीं दीखता, तो वह व्यक्ति अपने को दीन-हीन, असहाय और असमर्थ मानकर, प्रयत्न छोड़ बैठता है। पूछताछ करने पर शिकायतें करने के अतिरिक्त और उसके पास कुछ नहीं होता। दोषारोपण के विचार मस्तिष्क को इतना आच्छादित कर लेते हैं कि कुछ और सोचने की उसमें गुंजाइश ही नहीं रहती।

दूसरों की तुलना में अपने को हेय या हीन समझने की स्थिति भी कितनों को ही मानसिक रोगों का मरीज बना देती है। कुरूपता, मंद बुद्धि, गरीबी, किसी भूल के कारण स्थायी घृणा, अपमान, छूत रोग, लोकनिंदा आदि कारणों से कितने ही व्यक्ति अपने को हेय स्थिति में पाते हैं और एंप्यूटेशन से ग्रसित होकर रुग्ण संज्ञा में गिने जाने योग्य बन जाते हैं। वे कभी विरक्ति की बात सोचते हैं, कभी आत्म-हत्या की। आत्म-हीनता की ग्रंथि में बँधकर या तो वे घोर दब्बू हो जाते हैं या फिर 'ऐंजाइटी टेंशन' उन्हें तोड़-फोड़ करते रहने में लगा देते हैं।

'प्रैक्टिस ऑफ नेचरोपैथी' ग्रंथ के लेखक डॉक्टर लिड लेहर ने कितने ही प्रमाण देकर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि

'क्षय' वस्तुतः शारीरिक नहीं मानसिक रोग है। आत्म-ग्लानि की भावनाओं से पीड़ित मनुष्य ही बहुत करके यक्ष्मा के शिकार बनते हैं। उनमें से अधिकांश ऐसे अंसतुष्ट व्यक्ति होते हैं, जिन्हें जिंदगी नीरस और भारी पड़ रही होती है। उनकी अंतःचेतना इस स्थिति से ऊबकर किसी ऐसी विपत्ति को आमंत्रित करती है, जो इस अवांछनीय स्थिति से छुटकारा दिला सके। इस आमंत्रण को पाकर क्षय जैसे मृत्यु दूत सामने आ खड़े होते हैं।

अंतरावरोध और अंतर्द्वंद्व बढ़ते-बढ़ते 'शिजोफ्रेनिया' बन जाता है। बुद्धि और विवेक के सहारे उचित और अनुचित का भेद करके उसमें से जो उपयुक्त है, उसे स्वीकार कर लेना और जो अनुपयुक्त है, उसे हटा देना साधारण नियम है। इसी क्रम से सामान्य जीवनचर्या चलती है, किंतु कभी-कभी दो सर्वथा विपरीत पक्षों को मान्यता देने की स्थिति भी देखी गयी है। एक ओर यह विचार उठता है कि इसे करेंगे, फिर विपरीत पक्ष उठता है नहीं करेंगे। विवेक कुंठित हो जाता है और दोनों प्रतिपक्षी मान्यताएँ समान रूप से मस्तिष्क पर हावी रहती हैं। न किसी को छोड़ते बनता है और न अपनाते। दोनों में मल्लयुद्ध होता है और उनका अखाड़ा विचार बुद्धि से आगे बढ़कर अंतःचेतना के क्षेत्र में प्रवेश कर जाता है, यही अंतरावरोध या **अंतर्द्वंद्व** है। इस मानसिक विषमता से घिरे मनुष्य की आंतरिक स्थिति ऐसी हो जाती है जैसे दो साँड़ों के लड़ने के क्षेत्र में उगे हुए पौधे कुचलकर चकनाचूर हो जाते हैं और ऊबड़-खाबड़ निशान बन जाते हैं।

शिजोफ्रेनिया का रोगी बात-बात में दुटप्पी बात करता है। उसकी नीति दोगली होती है और गतिविधियाँ दुरंगी। अभी वह एक बात का समर्थन कर रहा था, अभी उसी का खंडन करने लगा। अभी सहमत था, अभी असहमत हो गया। अभी तीव्र इच्छा प्रकट की जा रही थी—अभी अनिच्छा घोषित कर दी गई। साथी लोग हैरान रहते हैं कि उसका किस प्रकार विश्वास करें और उससे क्या आशा रखें ? ऐसे व्यक्तियों के दैनिक व्यवहार में भी ऐसे विचित्र परिवर्तन होते हैं कि

उनका निर्वाह करने से जिनका संबंध है, वे असमंजस में पड़े रहते हैं। नीतियाँ, रुचियाँ, योजनाएँ बदलते रहने से वे स्वयं किसी प्रयत्न की न तो जड़ जमा पाते हैं और न किसी बात में सफल हो पाते हैं। आधे-अधूरे कामों का और विपरीत विचारों का चित्र-विचित्र, लेखा-जोखा देखते हुए उन्हें अस्थिर मति एवं विचित्र व्यक्ति ही कहा जा सकता है। इस स्थिति में वे स्वयं ही लज्जा और ग्लानि अनुभव करते हैं, पर विवशता उन्हें उबरने नहीं देती। दूसरों की खीझ और भर्त्सना से वे परिचित होते हैं, पर अंतर्द्वंद्वों में से कोई बुखार की तरह उन पर चढ़ बैठता है और वे किसी बाज के पंखों में फँसे चूहे की तरह कहीं से कहीं उड़ते चले जाते हैं।

केटाटोनिक शिजोफ्रेनिया, सिंपल शिजोफ्रेनिया आदि इस मनोरोग के कितने ही भेद-प्रभेद हैं, जिनमें मनुष्य का प्रेम और द्वेष ज्वार-भाटे की तरह चढ़ता-उतरता है, उत्साह और अपवाद चरम सीमा पर पहुँचता है। हर्ष-शोक के झूले में झूलते हुए और विपरीत स्तर की बातें सोचते, कहते, करते उसे देखा जा सकता है। इस अस्थिरता के कारण दूसरे लोग उसे ठीक तरह समझ ही नहीं पाते कि आखिर वह क्या है ? क्या करना चाहता है ?

मानसिक रोग देखने में इतने कष्टकारक नहीं होते कि रोगी पीड़ा से चीत्कार करता रहे। शांत, निष्क्रिय, मौन, उदास स्थिति में वह अपने आप में खोया, भूला रहता है। दूसरों की कुछ सहायता कर सकना तो दूर अपनी जीवन-यात्रा के लिए भी दूसरों की सहायता पर निर्भर रहता है। इस प्रकार का भार-भूत जीवन तब तक तो धकेला जाता रहता है, जब तक रोगी को अपनी दयनीय दशा का बोध नहीं होता और वह इस स्थिति में दूसरों को ही गलत या दोषी मानता है, पर जब कभी स्थिति सामान्य हो जाती है और अपनी दुर्दशा का, दूसरों पर भार भूत होने का अनुभव करता है, तो उसे मानसिक कष्ट भी बहुत होता है और उस व्यथा से उसकी बीमारी फिर बढ़ जाती है।

मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा।